वासंती

भाग 2

कक्षा 12 के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तक
(आधार पाठ्यक्रम)

वासंती

भाग 2

कक्षा 12 के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तक

(आधार पाठ्यक्रम)

संपादक

सत्येंद्र वर्मा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण ISBN 81-7450-179-7

जनवरी 2003

माघ 1924

PD 200T RP

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस श्री अरविंद मार्ग नई दिल्ली 110 016	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे- हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज बैंगलूर 560 085	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन अहमदाबाद 380 014	सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस 32, बी.टी. रोड, सुखचर 24 परगना 743 179

प्रकाशन सहयोग

संपादन : राजपाल

उत्पादन : अतुल सक्सेना

राजेन्द्र चौहान

चित्र : सीमा जबीं हुसैन

आवरण : कल्याण बैनर्जी

रु. 25.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित ।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नवटैक कंप्यूटर द्वारा लेज़र टाइपसैट होकर टैन प्रिंट्स (ई) प्रा. लि., 44 कि.मी. माईल्स स्टोन, नेशनल हाईवे, रोहतक रोड, गांव-रोहद, जिला - झज्जर, हरियाणा द्वारा मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान मे विद्यालयी स्तर पर विभिन्न शैक्षिक विषयों के लिए पाठ्यचर्या एवं तद्नुरूप पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तको के निर्माण का कार्य लगभग चार दशकों से हो रहा है। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के लागू होने पर तदनिहित सिद्धांतो, सुझावो और उद्देश्यों के अनुसार उपयुक्त शिक्षण-सामग्री एवं पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया, जिनमें बाल-केंद्रित शिक्षा एवं शिक्षार्थियो के सर्वागीण विकास पर विशेष बल दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह सुझाव भी दिया गया कि कुछ समय के पश्चात् ज्ञान-विज्ञान के विकास, सामाजिक रचना और नवीन दृष्टिकोण तथा मूल्यपरक शैक्षिक आवश्यकताओं को देखते हुए पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में यथावश्यक संशोधन और परिवर्तन अवश्य किया जाए। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2000* का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् नवीन पाठ्यचर्या मे सुझाए गए नवीन उद्देश्यो, जीवन-मूल्यों, सूचना-संसाधनों एवं शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की दृष्टि से अपेक्षित शैक्षिक बिंदुओं को समाहित करते हुए विविध विषयो का नवीन पाठ्यक्रम तैयार किया गया। तदनुसार नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य हाथ मे लिया गया। इसी शृंखला मे बारहवीं कक्षा के आधार पाठ्यक्रम के लिए प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक 'वासंती भाग 2' का प्रणयन किया गया है।

इस पाठ्यपुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1. ऐसी पाठ्यसामग्री एवं शैक्षिक क्रियाओ का समावेश जिनसे विद्यार्थियों में राष्ट्रीय लक्ष्यों – जनतांत्रिकता, पंथनिरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक

न्याय, समतावाद, संवैधानिक दायित्वों, मूल कर्तव्यों तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति चेतना एवं आस्था उत्पन्न हो सके और उनमें तर्कसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो।

2. पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री वर्तमान भारतीय जीवन-परिस्थितियों, समस्याओं (पर्यावरण, प्रदूषण, जनसंख्या विस्फोट आदि) तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित हों और उनमें वांछित भावी विकास की दिशा भी परिलक्षित हो।

3. पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों के भावात्मक एवं बौद्धिक उत्कर्ष, चरित्र-निर्माण तथा स्वस्थ मनोवृत्ति के विकास की दृष्टि से प्रेरणादायी सिद्ध हों, उनके द्वारा बच्चों में अधिकाधिक ज्ञानार्जन की उत्कंठा जाग्रत हो और वे निर्धारित पाठ्यविषय तक ही सीमित न रह कर विशद एवं व्यापक अध्ययन के लिए जिज्ञासु तथा तत्पर बने रहें।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक शिक्षाविदों, भाषाशास्त्रियों एवं अध्यापकों का सहयोग मिला है। मैं उन सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जिन लेखकों और कवियों ने अपनी रचनाएँ इस पाठ्यपुस्तक मे सम्मिलित किए जाने की अनुमति दी है, उनके प्रति मैं विशेषरूप से अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक के परिष्कार के लिए शिक्षाविदों, अध्यापकों और विद्यार्थियों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
अक्तूबर, 2002

संपादकीय

उपयुक्त पाठ्यक्रम के निर्धारण और उसके अनुरूप पाठ्यपुस्तक की रचना राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना के क्रियान्वयन तथा शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये मूल उपादान हैं। इस महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में विद्यालयी स्तर की शिक्षा के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रमों एवं पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन का कार्य होता रहा है। यह कार्य एक सतत विकासशील प्रक्रिया है। बदलती हुई राष्ट्रीय परिस्थितियों, आवश्यकताओं, नूतन जीवन-मूल्यों तथा वांछित विकास की दिशाओं के अनुरूप इनमें संशोधन और परिवर्तन आवश्यक हो जाता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में परिषद् ने सन 2000 में विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का निर्माण किया। इस पाठ्यचर्या के आधार पर विविध विषयो के पाठ्यक्रम निर्धारित किए गए। उनके अनुसार परिषद् ने सभी विषयों की नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का काम हाथ में लिया। इसी कार्यक्रम के अंतर्गत कक्षा बारह के लिए 'आधार पाठ्यक्रम' के अनुसार हिंदी की इस पाठ्यपुस्तक **वासंती भाग 2** का निर्माण किया गया है।

इस पाठ्यपुस्तक में दो खंड हैं – **गद्य खंड और काव्य खंड।**

गद्य खंड की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1. पाठों के चयन में ध्यान रखा गया है कि इस स्तर के विद्यार्थियों को हिंदी गद्य की कुछ प्रमुख विधाओं (निबंध, व्यंग्य, संस्मरण, कहानी) तथा गद्यशैलियों का परिचय प्राप्त हो जाए। इस दृष्टि से इन विधाओं के प्रतिनिधि साहित्यकारों की रचनाएँ इस पुस्तक में संग्रहीत हैं।

2. पाठों के चयन मे इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि इन पाठों के द्‌वारा विद्‌यार्थियो मे भाषिक तथा साहित्यिक क्षमता का विकास हो और उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का स्तर समुन्नत हो।
3. पाठो के चयन में विषयवस्तु, भाषा और शैली की विविधता, सरसता और रोचकता का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। इनके अध्ययन से विद्‌यार्थियों को गद्‌य की विविध शैलीगत विशेषताओं से परिचित होने का अवसर मिलेगा और विषयसामग्री के माध्यम से जीवन के अनेक पक्षों की झॉकी मिलेगी ; जैसे – चरित्र-निर्माण, वैज्ञानिक दृष्टि, राष्ट्रीय चेतना, सांप्रदायिक सद्‌भाव, मानवीय गुण आदि।
4. हिंदी गद्‌य साहित्य के विकास और उसके विभिन्न रूपों का परिचय इस खंड की भूमिका (हिंदी गद्‌य का विकास) में दिया गया है ।
5. विद्‌यार्थियों के बौद्‌धिक स्तर एवं ग्रहणशीलता को ध्यान में रखकर पाठ्‌यसामग्री का कहीं-कही आवश्यक संपादन भी किया गया है । कितु ऐसा करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि रचना के मूल भाव और साहित्यिक सौष्ठव को कोई क्षति न पहुँचे ।

काव्य खंड की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं .

1 इस खंड में भक्ति काल के चार कवियों तथा आधुनिक काल के नौ कवियों की कविताओ का संकलन है।
2. इन कविताओं के अध्ययन से विद्‌यार्थी हिंदी काव्य-भाषा के चारों रूपो का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। भक्तिकालीन कवियों में रैदास, नानक और दादूदयाल की काव्य भाषा को साहित्य समीक्षकों ने जन सामान्य की भाषा कहा है । तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की भाषा अवधी है तथा अन्य काव्यग्रंथ ब्रज भाषा में हैं। आधुनिक काल के कवियों की काव्य भाषा खड़ीबोली हिंदी है।
3. कविताओं के चयन में विद्‌यार्थियों के भाषा-ज्ञान, भाव-बोध की क्षमता और रुचि की विविधता का ध्यान रखा गया है, जिससे वे कविता के विविध रूपो से अवगत हो सकेंगे और उनकी सराहना कर सकेगे।
4. संकलित कविताओं के अध्ययन से विद्‌यार्थी आधुनिक हिंदी काव्य की विविध शैलियों और प्रवृत्तियो का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

5. आधुनिक हिंदी कविता के विकास-क्रम को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के प्रमुख कवियों की रचनाएँ संकलित की गई हैं।
6. हिंदी कविता की प्रवृत्तियों का परिचय इस खंड की भूमिका (हिंदी-काव्य-परंपरा) मे दिया गया है। इससे कविता के अध्ययन मे विद्यार्थियों को विशेष सहायता मिलेगी।

दोनों खंडों में प्रत्येक पाठ के अंत में उससे संबंधित प्रश्न और अभ्यास तथा कठिन अंशों को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से शब्दार्थ और टिप्पणी दी गई है। इनसे विद्यार्थियों में विषयवस्तु की व्याख्या, विवेचना, सराहना तथा उन पर स्वतंत्र रूप से विचार करने की योग्यता का विकास होगा।

उल्लेखनीय है कि यदि पाठों का शिक्षण सत्रवार (सेमेस्टर) किया जाना हो तो पाठों के निम्नलिखित क्रम को अपनाया जा सकता है :

प्रथम सत्र : *(गद्य खंड)* 1. यह देश एक है 2. नीलू 3. नदी बहती रहे; *(काव्य खंड)* 4. संतवाणी : रैदास, नानक, दादूदयाल 5. तुलसीदास 6. निराला 7. माखनलाल चतुर्वेदी 8. सुभद्राकुमारी चौहान 9. हरिवंश राय 'बच्चन'।

द्वितीय सत्र :*(गद्य खंड)* 1. चित्र 2. एक था पेड़ और एक था ठूँठ ! 3. तत्सत् 4. मेरे लिए भारतीय होने का अर्थ, *(काव्य खंड)* 5. केदारनाथ अग्रवाल 6. शिवमंगल सिंह 'सुमन' 7. भारत भूषण अग्रवाल 8. गिरिजा कुमार माथुर 9. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

इस पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक शिक्षाविदों और भाषाशास्त्रियों का सहयोग मिला है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। परिषद् के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के अध्यक्ष तथा हिंदी पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन से संबधित सदस्यो का हमे जो अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए हम उनके प्रति भी कृतज्ञ हैं।

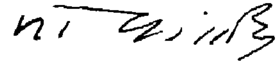
हिंदी भाषा का स्तर ऊँचा करने तथा विद्यार्थियों में साहित्यिक अभिरुचि का विकास करने मे यदि इस पुस्तक का योगदान हो सका तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे।

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।



पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

प्रो. सत्येंद्र वर्मा — **संयोजक**

डॉ. स्नेहलता प्रसाद — **रीडर**

सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

पांडुलिपि समीक्षा-संशोधन कार्यगोष्ठी के सदस्य

1. श्री निरंजन कुमार सिंह
अवकाशप्राप्त रीडर
सा.वि.मा.शि.वि.,एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली
2. डॉ. एच. पी. राजगुरु
अवकाशप्राप्त उपायुक्त
केंद्रीय विद्यालय संगठन
भोपाल, म. प्र.
3. प्रो. माणिक गोविंद चतुर्वेदी
अवकाशप्राप्त प्रोफ़ेसर
केंद्रीय हिंदी संस्थान
आगरा, उ.प्र.
4. डॉ. आनंद प्रकाश व्यास
अवकाशप्राप्त रीडर
शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
5. डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी
प्रोफ़ेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान
नई दिल्ली
6. डॉ. मानसिंह वर्मा
अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ, उ.प्र.
7. डॉ. अनिरुद्ध राय
अवकाशप्राप्त प्रोफ़ेसर
सा.वि.मा.शि.वि.
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली
8. डॉ दिनेश गुप्त
रीडर, पत्राचार पाठ्यक्रम एवं
अनुवर्ती शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
9. डॉ. (कु.) नीरा नारंग
वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
10. श्री लोकेंद्र चतुर्वेदी
प्राचार्य, शासकीय विद्यालय,
कनाडिया
इंदौर, म.प्र.
11. श्री प्रभाकर द्विवेदी
अवकाशप्राप्त मुख्य संपादक
प्रकाशन विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

12 श्रीमती मंजूरानी सिंह
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
केंद्रीय विद्यालय, जे.एन.यू. परिसर
न्यू महरौली रोड, नई दिल्ली

13. कु. कुसुम लता अग्रवाल
हिंदी अध्यापिका
सर्वोदय बाल विद्यालय
रमेश नगर, दिल्ली

14 श्रीमती लक्ष्मी मुकुंद
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
डी.टी.ई.ए. स्कूल, सेक्टर-4
आर.के. पुरम, नई दिल्ली

15. श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'
अवकाशप्राप्त उपनिदेशक
सूचना एवं जनसंपर्क विभाग
उ.प्र. शासन, लखनऊ

16. श्री विश्वनाथ सिंह
अवकाशप्राप्त अध्यक्ष
पाठ्यपुस्तक निर्माण विभाग
साक्षरता निकेतन, लखनऊ, उ.प्र.

17. श्री अमर गोस्वामी
वरिष्ठ लेखक
एफ-12, सेक्टर-12
नोएडा, गौतमबुद्ध नगर, उ.प्र.

राष्ट्र वंदना

(वेद की ऋचाओं से रूपांतर)

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।4।।

ऋक. 10/121

जिसके फैले बाहु-पाश में
आवेष्टित होने को आतुर दिशा-दिशांतर,
उद्‌घोषित हो रहा समुद्रों के सीने में
जिसके गौरव-गीतों का संघोष निरंतर;
हिम-मंडित पर्वत-मालाएँ जिसे दे रहीं
अभिनंदन का मौन समर्पण,
उस महिमाशाली स्वदेश के कर्म-यज्ञ में
मेरी जीवन-समिधा अर्पण

रूपांतरकार – बशीर अहमद 'मयूख'

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की सप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

विषय-सूची

काव्य खंड

गद्‌य खंड

हिंदी गद्य का विकास

हिंदी गद्य का उद्भव

हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास विगत एक सहस्त्र वर्ष का इतिहास है, जिसमे शौरसेनी, अपभ्रंश, ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी, प्राचीन हिंदी आदि का पद्यात्मक साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इस विशाल साहित्य-राशि में गद्य के भी कुछ उदाहरण मिल जाते हैं किंतु वास्तव में हिंदी गद्य का विकास उन्नीसवीं शताब्दी से हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दी मे नवजागरण की जो लहर देश में फैली थी उसका प्रभाव भाषा, साहित्य, संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना पर पड़ना स्वाभाविक था। सामाजिक एवं धार्मिक सुधार, सांस्कृतिक आंदोलन, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असंतोष, राष्ट्रीय भावना का उदय और प्रसार आदि अनेक रूपों में नई चेतना उत्पन्न हो रही थी। इनके कारण एक राष्ट्रभाषा की संकल्पना भी जग रही थी। इसी समय डाक, रेल, तार आदि संचार साधनों के विकास के कारण परस्पर विचार-विनिमय, संपर्क और जन शिक्षा का भी प्रसार हुआ। इस नवजागरण और चेतना की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त माध्यम के रूप में हिंदी गद्य-साहित्य का विकास हुआ। इस गद्य-साहित्य की भाषा खड़ी बोली थी। ब्रजभाषा अब काव्यभाषा तक ही सीमित रह गई थी पर आगे चलकर काव्यभाषा का स्थान भी खड़ीबोली ने ही ग्रहण कर लिया।

खड़ीबोली के विकास के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारभ से ही प्रयास होने लगा था। सन 1806 में कोलकाता में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना द्वारा हिंदी-उर्दू के प्रचार के लिए जो प्रयास हुए उनमें यह तथ्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लल्लू जी लाल (1750-1825) तथा सदल मिश्र (1756-1828) ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज मे

भाषा मुंशी के पद पर काम करते हुए क्रमशः ***प्रेमसागर*** तथा ***नासिकेतोपाख्यान*** नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की। उसी दौरान स्वतत्र रूप से हिंदी गद्य लिखने वालों में मुंशी सदासुखलाल तथा इंशा अल्ला खाँ का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। सदासुखलाल रचित ***सुखसागर*** और इंशा अल्ला खॉ रचित ***रानी केतकी की कहानी*** तत्कालीन हिंदी गद्य के अच्छे उदाहरण हैं।

भारतेंदु युग (1850-1900)

इस युग में उत्तर भारत में नवजागरण चेतना की दृष्टि से स्वामी दयानंद सरस्वती की भूमिका उल्लेखनीय है। उनकी मातृभाषा गुजराती और अर्जित भाषा संस्कृत थी किंतु राष्ट्रीय हित को ध्यान मे रखकर उन्होंने हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। जिन ग्रंथो को प्रारंभ में उन्होंने संस्कृत में लिखा था, उनका भी हिंदी में अनुवाद स्वयं किया और अपना सुप्रसिद्ध ग्रंथ ***सत्यार्थ प्रकाश*** हिंदी में लिखा।

भारतेंदु हरिश्चंद्र को हिंदी गद्य का युग-प्रवर्तक कहा जाता है। उन्होंने नवजागरण की इस चेतना को भाषा और साहित्य से जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया। भारतेदु ने भाषा को सरल, सुबोध, सुष्ठु और संप्रेषणीय बनाने की दिशा में अथक प्रयास किए। उनसे पहले राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' और राजा लक्ष्मण सिंह हिंदी गद्य में रचनाएँ कर रहे थे। राजा शिवप्रसाद उर्दू मिश्रित हिंदी के पक्षपाती थे और राजा लक्ष्मण सिंह तत्सम प्रधान हिंदी गद्य को प्रश्रय देते थे। भारतेदु हरिश्चंद्र ने अपनी समन्वयी दृष्टि से सहज़-सरल हिंदी गद्य का पथ-प्रशस्त किया और निबंध, नाटक, कहानी, समाचारपत्र आदि विविध विधाओं में रचनाएॅ प्रस्तुत कीं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी गद्य के विकास के लिए ऐसे लेखकों को भी प्रोत्साहित किया जिन्होंने हिंदी गद्य के विकास में अपनी रचनाओं द्वारा उल्लेखनीय योगदान किया। इनमें प्रमुख हैं : बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, अंबिका दत्त व्यास, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', जगमोहन सिंह, राधाचरण गोस्वामी आदि।

राष्ट्रीय जागरण युग : हिंदी गद्य का परिष्कार काल

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों तथा सहयोगियों के सम्मिलित प्रयासो से हिंदी गद्य को जो रूप दिया उसमें सरलता और संप्रेषणीयता होने के बावजूद व्याकरण की व्यवस्था नहीं थी। भाषा विषयक अराजकता उसमें बनी हुई थी क्योंकि अधिकांश

गद्य लेखकों का ध्यान विषयगत विभिन्नता पर था, भाषा-परिष्कार पर नहीं। हिंदी-प्रदेश के लेखक भिन्न-भिन्न भागों के स्थान भेद से भिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग कर रहे थे। हिंदी को नई चाल में ढाल देने पर भी भारतेदु जी उसमें एकरूपता नहीं ला पाए थे। न उसमें व्याकरण की व्यवस्था हो पाई, न शब्दों का स्वरूप निर्धारण और न ही उनका सुष्ठु प्रयोग। भाषा बदलने और उसमें भावव्यंजक शक्ति लाने के लिए समाज की समष्टिगत चेतना का भी योग रहता है। यह युग राष्ट्रीय जागरण का युग था। इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। ब्रिटिश शासन से मुक्त होकर स्वतंत्र भारत का स्वप्न देखनेवाले नेता अपनी आवाज़ बुलंद करने लगे थे। जागृति के इस युग में भाषा के सामर्थ्य पर जन साधारण का ध्यान जाना अनिवार्य था। नेताओं की समाज सुधार और राष्ट्रीय चेतना विषयक वक्तृताएँ, लेख, भाषण आदि पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे थे। भाषा परिष्कार की दिशा में सबसे अधिक सजग रूप से कार्य करने वाली पत्रिका *सरस्वती* थी।

द्विवेदी युग

राष्ट्रीय जागरण के इस युग मे सामाजिक एवं शैक्षिक जगत में भी पर्याप्त सुधार के कार्य हुए। इस युग को हिंदी साहित्य के इतिहास में 'द्विवेदी युग' (1900-1920) के नाम से जाना जाता है। द्विवेदी युग का नामकरण प. महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से हुआ और उनकी प्रसिद्धि का कारण बना भाषा परिष्कार का प्रयास। *सरस्वती* पत्रिका के माध्यम से द्विवेदी जी ने हिंदी के लेखकों का ध्यान व्याकरण संबंधी अशुद्धियों की ओर आकृष्ट किया। *हिंदी की वर्तमान अवस्था* शीर्षक लेख मे उन्होंने भाषा की शब्द ग्राह्यता पर विचार व्यक्त किया और व्याकरण के अनेक विवादग्रस्त विषयों का स्पष्टीकरण भी किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने गद्य की जितनी शैलियों का सूत्रपात किया था, द्विवेदी युग में उन्हें व्यापक आयाम मिला। इस युग में कुछ प्रौढ़ गद्य लेखक हुए जिन्होंने अपनी लेखनी से हिंदी गद्य को परिमार्जित और पुष्ट किया। गोविंदनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, पद्मसिह शर्मा 'कमलेश', चंद्रधर शर्मा गुलेरी, ब्रजरत्नदास आदि का नाम उल्लेखनीय है। हिंदी गद्य का यह परिष्कार युग विषय-वैविध्य की दृष्टि से भी बहुत संपन्न माना जाता है। इस युग में अभिव्यंजना शक्ति, शैली-सौष्ठव की दृष्टि से भाषा भी समृद्ध हुई। हिंदी गद्य में उत्कृष्ट कोटि के

समीक्षात्मक लेखों का प्रचलन भी इसी युग मे हुआ। *सरस्वती, इंदु, प्रभा* आदि पत्रिकाओं ने इस दिशा मे अमिट योग दिया।

गद्य की व्यापक भूमि

इस काल में गद्य को लोकप्रिय, सरस, सरल और व्यंजक मुहावरेदानी से परिपूर्ण बनाने में सबसे बडा योगदान यदि किसी एक लेखक का है तो वे हैं मुंशी प्रेमचंद। प्रेमचंद प्रारंभ मे उर्दू में लिखते थे कितु राष्ट्रीय जागरण की लहर में हिंदी एक प्रबलधारा थी जो जन-मन को आकृष्ट कर रही थी। प्रेमचद ने हिंदी के लोकव्यापी प्रभाव को समझा और उसके अनुसार हिंदी की ओर आकृष्ट हुए। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में हिंदी-उर्दू की विभाजक रेखाओ को जिस समन्वयी दृष्टि से मिटाया, वह आज के युग में भी अनुकरणीय है। प्रेमचंद की भाषा-शैली इसीलिए राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से भी प्रशंसनीय है।

प्रौढ़ता, परिष्कार और भाषा सामर्थ्य

द्विवेदी युग में गद्य के परिष्कार के साथ विषयवस्तु में जो व्यापकता आई थी, उसका प्रभाव हिंदी के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से उल्लेखनीय है। जनमानस मे हिंदी एक ऐसी भाषा का रूप धारण करने में समर्थ हो गई जिसे गंभीर से गंभीर अभिव्यक्ति के लिए सर्वथा उपयुक्त माना जाने लगा। छायावाद के प्रमुख कवियों ने भी गद्य-शैली के सुंदर निदर्शन प्रस्तुत किए। कवित्वपूर्ण भाषा में लिखे प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा के निबंध साहित्यिक भाषा की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

गद्य की प्रांजलता, प्रौढ़ता और उत्कृष्टता की दृष्टि से इस युग में (सन 1921-1940) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का नाम विशेषरूप से स्मरण किया जाता है। आचार्य शुक्ल ने अपने निबंधों मे वैयक्तिक संस्पर्श के साथ भाव और विचार को व्यक्त करने की जो शैली स्वीकार की वह पूर्ववर्ती किसी लेखक के पास नहीं थी। गंभीर विचार, उदात्त भाव, गहन चिंतन-मनन, सरस हास्य-व्यंग्य के छींटे उनके निबंधों में उपलब्ध होते हैं। विषयपरक मनोवैज्ञानिक निबधो को भी उन्होने अपनी शैली से रोचक बना दिया है। आचार्य शुक्ल के समकालीन गद्य लेखकों में श्यामसुंदर दास, गुलाबराय, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि, रामवृक्ष बेनीपुरी, राय कृष्णदास, राहुल सांकृत्यायन आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं।

हिंदी गद्य को व्यापक क्षितिज प्रदान करने का श्रेय आचार्य शुक्ल के बाद आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को है। द्विवेदी जी का गद्य अपेक्षाकृत सरल, प्रवाहपूर्ण और भावव्यंजक है। पांडित्य के बोझ को जिस सहजता से द्विवेदी जी उठाते हैं वह बेमिसाल है। यदि संस्कृत भाषा का आधिपत्य देखना हो तो उनका उपन्यास ***बाणभट्ट की आत्मकथा*** पढ़ना चाहिए और यदि उनके सहज-सरल गद्य को पढ़ना हो तो ***अशोक के फूल, कुटज, विचार प्रवाह, कल्पलता, विचार और वितर्क*** आदि निबंध संग्रहों के पृष्ठ पलटने चाहिए। द्विवेदी जी का गद्य साहित्यिक गरिमा के साथ सांस्कृतिक उत्कर्ष का भी द्योतक है।

गद्य की विविध विधाएँ

हिंदी गद्य को व्यापक आयाम प्रदान करने में विविध साहित्य-विधाओ का भी योगदान रहा है। उपन्यास, नाटक, एकांकी, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, समालोचना, डायरी, पत्र आदि अनेक साहित्य-विधाओं में लिखा जाने वाला गद्य इस युग के साहित्य को समृद्ध बनाने के साथ लोकप्रिय और व्यवहारोपयोगी बनाने मे भी सफल रहा है। उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद के बाद जिन लेखकों ने उच्चकोटि का कथा-साहित्य लिखा उनमे जयशंकर प्रसाद, विश्वबंरनाथ शर्मा 'कौशिक', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', वृंदावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, फणीश्वर नाथ 'रेणु', धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, भीष्म साहनी आदि का नाम उल्लेखनीय है। आज की कहानी नई भंगिमा में उभर कर सामने आई है। नई कहानी के नाम से जो कहानीकार उभरे हैं, उनमें कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, मार्कडेय, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, भीष्म साहनी, काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन आदि हैं।

नाटक और एकांकी के क्षेत्र में भारतेदु हरिश्चंद्र के बाद जयशकर प्रसाद का योगदान सर्वश्रेष्ठ है। प्रसाद के नाटकों की भाषा अभिनय के स्तर पर कुछ क्लिष्ट अवश्य है कितु भाव-गांभीर्य का पुट होने से उसमे प्रांजलता आ गई है। नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविंद दास, लक्ष्मीनारायण लाल, नरेश मेहता, विनोद रस्तोगी, गिरिराज किशोर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भीष्म साहनी, सुरेंद्र वर्मा, मणि मधुकर, रमेश बख्शी आदि के नाम उनकी गद्य-शैली के कारण स्मरणीय हैं। एकांकी के क्षेत्र में अनेक लेखको ने सफल

प्रयोग किए हैं। उदयशंकर भट्ट, भुवनेश्वर प्रसाद, रामकुमार वर्मा, उपेंद्रनाथ 'अश्क', जगदीशचंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल आदि के एकांकी अभिनय की दृष्टि से अच्छे हैं।

समीक्षात्मक निबंध और गंभीर पुस्तके भी इस युग में प्रचुर मात्रा मे लिखी गईं हैं। इन निबंधो में गद्य की छटा देखने योग्य है। गूढ़-गंभीर भाव को समीक्षा के स्तर पर स्पष्ट करने की क्षमता वाला गद्य इनमें पाया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद नंददुलारे वाजपेयी, बाबू गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, शातिप्रिय द्विवेदी, नगेंद्र, रामविलास शर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि ने प्रौढ़ गद्य का निर्माण किया है।

निबंध की एक नई विधा ललित निबंध नाम से विकसित हुई जिसका प्रारंभ भारतेंदु युगीन लेखकों ने किया था। उनमे प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट के नाम मुख्य थे किंतु उसका सही विकास हजारीप्रसाद द्विवेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रामवृक्ष बेनीपुरी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, शिवप्रसाद सिंह, विवेकीराय आदि लेखकों ने किया। इनके निबंधों की ललित शैली सांस्कृतिक विषयों पर अच्छा प्रकाश डालती है।

हिंदी गद्य को प्रांजल, रोचक और पठनीय बनाने में रेखाचित्रों और संस्मरणो का योगदान उल्लेखनीय है। यों तो संस्मरण और रेखाचित्र लिखने का प्रारंभ द्विवेदी युग में ही हो गया था कितु इन विधाओं का सम्यक् विकास हिंदी गद्य के प्रौढ़ युग में अर्थात् छायावाद में हुआ। शिवपूजनसहाय, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', महादेवी वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी ने उन दिनो संस्मरण, जीवनी और रेखाचित्र लिखकर हिंदी गद्य को समृद्ध किया। यह विधा आज और अधिक प्रौढ़ हो गई है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रामवृक्ष बेनीपुरी, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, जगदीशचंद्र माथुर आदि ने उत्तम कोटि के रेखाचित्र और संस्मरणात्मक लेख लिखे हैं।

जीवनी साहित्य हिंदी गद्य को व्यापक रूप् प्रदान करने में योग दे रहा है। अमृतराय की पुस्तक ***कलम का सिपाही***, विष्णु प्रभाकर का ***आवारा मसीहा***, रामविलास शर्मा की ***निराला की साहित्य साधना*** अपनी-अपनी गद्य शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इस युग में आत्मकथा लेखन का भी प्रचार हुआ है। राजनीतिक नेताओं की अंग्रेज़ी में लिखी आत्मकथाओ के हिंदी अनुवाद हुए हैं। उग्र की ***अपनी खबर***, चतुरसेन शास्त्री की ***अपनी आत्मकथा***, बच्चन की ***क्या भूलूँ क्या याद करूँ*** तीन भागों में प्रकाशित आत्मकथा,

वृंदावनलाल वर्मा की ***आत्मकहानी,*** सेठ गोविंददास का ***आत्मनिरीक्षण,*** भाई परमानद की ***आपबीती*** आदि रचनाएँ आत्मकथा के सुंदर उदाहरण हैं।

यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज का भी इस युग में प्रचार हुआ है। अनेक रोचक यात्रा-वृत्तात समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशिल होते रहते हैं। रिपोर्ताज़ एक नई विधा है जिसका प्रचलन अभी अपेक्षाकृत कम है किंतु इस शैली का गद्य अपना नया क्षेत्र बना रहा है। रांगेय राघव का **तूफानों के बीच,** धर्मवीर भारती के **ब्रह्मपुत्र का मोर्चा** और **ठेले पर हिमालय** महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज हैं। हास्य-व्यंग्य भी निबंध की नई शैली बन कर उभरी है जिसमे व्यंग्य लेखक अपनी छाप छोड रहे हैं। इन लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी, शंकर पुणतांबेकर, गोपाल चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सक्षेप मे, हिंदी गद्य की यह दीर्घकालीन यात्रा अब प्रौढ़ता और प्रांजलता के साथ समृद्ध होकर निरतर प्रशस्त पथ पर अग्रसर है। नवलेखन के नाम से कई वर्ष पहले जो आंदोलन शुरू हुआ था, वह अब नया न रहकर गद्य की मुख्य धारा (समकालीन लेखन) मे समाविष्ट हो गया। इस प्रकार गद्य की विविध विधाओं के प्रचलन से गद्य निरंतर पुष्ट, प्रांजल और प्रभावपूर्ण हो रहा है। कहना न होगा कि आज का हिदी गद्य गंभीर से गंभीर विषय को प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ है और वह किसी भी समृद्ध साहित्यिक भाषा से टक्कर ले सकता है। आज की पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी गद्य के उभरते रूप इस बात के प्रमाण हैं कि किसी पुरानी परिपाटी पर हिंदी गद्य का विकास नहीं हो रहा है अपितु वह अपनी अभिव्यजना-सामर्थ्य से नए-नए प्रयोग करके अपना क्षितिज व्यापक कर रहा है।

रामधारी सिंह 'दिनकर'



रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म मुंगेर ज़िले के सिमरिया ग्राम मे सन 1908 मे हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय पाठशाला में ही हुई। पटना कॉलेज से बी. ए. (इतिहास में प्रतिष्ठा) करने के बाद वे कुछ दिनों के लिए अध्यापक भी रहे। सन 1947 से 1950 तक उन्होंने जन-संपर्क विभाग में निदेशक के पद पर कार्य किया। कुछ समय तक लंगट सिंह कॉलेज मे हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। सन 1952 में वे भारतीय संसद के सदस्य मनोनीत हुए। सन 1964 में वे भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुए, पर सन 1965 में उन्होने त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् उन्होने केद्रीय सरकार के हिंदी सलाहकार का पद सँभाला।

भारत सरकार ने 'दिनकर' को पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया। **संस्कृति के चार अध्याय** नामक उनकी पुस्तक पर साहित्य अकादमी पुरस्कार और उर्वशी पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।

दिनकर का निधन सन 1974 में हुआ।

'दिनकर' की प्रसिद्धि का मुख्य आधार उनका काव्य है, पर इसके साथ-साथ गद्य-साहित्य में भी उनका अमूल्य योगदान है। उनके निबंधों में विचारों की स्पष्टता और अभिव्यक्ति की सहजता तथा सजीवता का अद्भुत मेल है। उन्होंने संस्कृति, सामाजिक जीवन और राष्ट्रीय समस्याओ पर बहुत ही मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक लेख लिखे हैं। 'दिनकर' की रचनाओं मे उनके व्यक्तित्व की झलक मिलती है। उनकी भाषा-शैली में प्रसादगुण के साथ-साथ भाषा-प्रवाह और ओज का भी सम्मिश्रण है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं : **गद्य : संस्कृति के चार अध्याय, मिट्टी की ओर, शुद्ध कविता की खोज, साहित्यमुखी, काव्य की भूमिका, अर्द्धनारीश्वर, उजली**

आग, देश विदेश। काव्य : रेणुका, हुंकार, रसवंती, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, सामधेनी, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, हारे को हरिनाम *आदि।*

प्रस्तुत निबंध ***यह देश एक है*** *दिनकर के 'हमारी सांस्कृतिक एकता' नामक निबंध-संग्रह से लिया गया है। इस निबंध में लेखक ने यह प्रतिपादित किया है कि भारत की एकता उसकी विविधता में निहित है। इस देश में भौगोलिक, धार्मिक, सामाजिक रीति-नीति और भाषा की दृष्टि से भले ही विविधता दिखाई पड़े, पर आंतरिक रूप से साहित्यिक भावधारा, सांस्कृतिक और दार्शनिक जीवन-मूल्य ऐसे हैं जो समस्त भारतवासियो को एकता के सूत्र में आबद्‌ध किए हुए हैं। हमारा भूगोल भी ऐसा है कि उसने पहाड़ो और नदियों द्‌वारा इस देश को भीतर से बॉट रखा है, पर साथ-ही पहाड़ों और समुद्रों से घिरे हुए इस विशाल देश को भौगोलिक एकता भी दे रखी है।*

यह देश एक है

अकसर कहा जाता है कि भारतवर्ष की एकता उसकी विविधताओं मे छिपी हुई है और यह बात ज़रा भी गलत नही है, क्योकि अपने देश की एकता जितनी प्रकट है, उसकी विविधताएँ भी उतनी ही प्रत्यक्ष हैं।

भारतवर्ष के नक्शे को ध्यान से देखने पर यह साफ़ दिखाई पड़ता है कि इस देश के तीन भाग प्राकृतिक दृष्टि से बिलकुल स्पष्ट हैं। सबसे पहले तो भारत का उत्तरी भाग है, जो लगभग हिमालय के दक्षिण से लेकर विंध्याचल के उत्तर तक फैला हुआ है। उसके बाद विंध्य से लेकर कृष्णा नदी के उत्तर तक का वह भाग है, जिसे हम दक्खिनी प्लेटो (पठार) कहते हैं। इस प्लेटो के दक्षिण, कृष्णा नदी से लेकर कुमारी अंतरीप तक का जो भाग है वह एक प्रायद्वीप जैसा है। अचरज की बात है कि प्रकृति ने भारत के जो ये तीन खंड किए हैं, वे ही खंड भारतवर्ष के इतिहास के भी क्रीड़ास्थल रहे हैं। पुराने समय में उत्तर भारत में जो राज्य कायम किए गए, उनमे से अधिकांश विंध्य की उत्तरी सीमा तक ही फैलकर रह गए। विंध्य को लॉघकर उत्तर भारत को दक्षिण भारत से मिलाने की कोशिशें तो बहुत की गई, मगर इस काम में कामयाबी किसी-किसी को ही मिली। कहते हैं, पहले-पहल अगस्त्य ऋषि ने विंध्याचल को पार करके दक्षिण के लोगों को अपना संदेश सुनाया था। फिर भगवान श्री रामचंद्र ने लंका पर चढ़ाई करने के सिलसिले में विंध्याचल को पार किया। महाभारत के ज़माने में उत्तरी और दक्षिणी भारत एक राज्य के अधीन थे या नही, इसका कोई पक्का सबूत नहीं मिलता। लेकिन, रामचंद्रजी ने उत्तरी और दक्षिणी भारत के बीच जो एकता स्थापित की, वह महाभारत काल मे भी कायम थी और दोनों भागों के लोग आपस में मिलते-जुलते रहते थे। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दक्षिण के राजे भी आए थे और कुरुक्षेत्र के मैदान

में जो महायुद्ध हुआ था, उसमें भी दक्षिण के वीरों ने हिस्सा लिया था, इसका प्रमाण महाभारत में ही मौजूद है। इसी तरह चंद्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य और उनके बाद मुगलों ने इस बात के लिए बड़ी कोशिश की कि किसी तरह सारा देश एक शासन के अधीन लाया जा सके और उन्हें इस कार्य मे सफलता भी मिली। लेकिन भारत के इतिहास की एक शिक्षा यह भी है कि इस देश को एक रखने के काम में यहाँ के राजाओं को जो भी सफलता मिली, वह ज़्यादा टिकाऊ नहीं हो सकी। इस देश के प्राकृतिक ढाँचे में ही कोई ऐसी बात थी जो सारे देश को एक रहने देने के खिलाफ़ पड़ती थी। यही कारण था कि जब भी कोई बलवान और दूरदर्शी राजा इस काम मे लगा, सफलता थोडी-बहुत उसे ज़रूर मिली। लेकिन स्वार्थी, अदूरदर्शी और कमज़ोर राजाओं के आते ही देश की एकता टूट गई और जो कठिनाई विंध्य के उत्तर को विंध्य के दक्षिण से मिलने मे हुई, वही कठिनाई कृष्णा नदी के उत्तर के भाग को उसके दक्षिण के भाग से मिलाकर एक रखने में होती रही।

इस देश में वैर-फूट का यह भाव इतना प्रबल क्यों रहा, इसके भी कारण हैं। बड़ी-बड़ी नदियो और बड़े-बड़े पहाड़ो के गुण अनेक हैं, लेकिन, उनमें एक अवगुण भी होता है कि वे जहॉ रहते हैं, वहॉ देश के भीतर अलग-अलग क्षेत्र बना देते हैं और इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के भीतर एक तरह की प्रांतीयता या क्षेत्रीय जोश पैदा हो जाता है। पहाड़ों और नदियों ने भारत को भीतर से काटकर उसके अनेक क्षेत्र बना दिए और संयोग की बात कि कई क्षेत्रों में ऐसी जनता का जमघट हो गया जो कोई एक क्षेत्रीय भाषा बोलने वाली थी। इसके सिवा यह देश है भी बहुत विशाल। इसके उत्तरी छोर पर कश्मीर पड़ता है, जिसकी जलवायु लगभग मध्य एशिया की जलवायु के समान है। इसके विपरीत भारत के दक्षिणी छोर पर कुमारी अंतरीप है, जहॉ के घरों की रचना और लोगों के रंग-रूप आदि में लंका या सीलोन का नमूना शुरू हो जाता है। चेरापूँजी भी इसी देश में है जहॉ पॉच सौ इंच से अधिक वर्षा होती है और थार की मरुभूमि भी यहीं है जहाँ वर्षा होती ही नहीं अथवा नाममात्र की होती है। धरती की रूपरेखा और जलवायु का प्रभाव उसपर बसने वाले लोगों के शरीर और मस्तिष्क, दोनों पर पड़ता है। पहाड़ और रेगिस्तान की ज़िंदगी ज़रा मुश्किल होती है। यही कारण है कि उनमें बसने वाले लोग आज़ाद तबीयत के होते हैं, क्योंकि प्रकृति की कठिनाइयों को झेलते-झेलते उनका शरीर कड़ा और मन साहसी एवं निर्भीक हो जाता है। भारतीय इतिहास में राजपूतों और

मराठों की वीरता जो इतनी प्रसिद्ध हुई, उसका एक कारण यह भी है कि बचपन से ही मराठों को पहाड़ी तथा राजपूतों को पहाड़ी और रेगिस्तानी, दोनो ही प्रकार के जीवन से संघर्ष करने का मौका हासिल था। इसके विपरीत, नदियों के पठारों में रहनेवाले लोग किसान तबीयत के हो जाते हैं, क्योंकि पठार की ज़मीन उपजाऊ होती है, वहाँ रहने वालों को जीने के लिए ज़्यादा मेहनत करने की ज़रूरत नहीं होती। यही कारण है कि बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के किसान वैसे तगड़े नहीं होते, जैसे राजस्थान के राजपूत या उत्तर-पश्चिमी भारत के औसत सिक्ख और पठान लोग होते हैं। जलवायु एवं क्षेत्रीय सुविधा के अनुसार ही लोगों के पहनावे-ओढ़ावे और खान-पान में भी भेद हो जाता है जो भेद भारत में बहुत ही प्रत्यक्ष है। असल मे इन भेदों को मिटाकर अगर हम कोई एक राष्ट्रीय ढंग चलाना चाहें तो उससे अनेक लोगो को बहुत ज़्यादा तकलीफ़ हो जाएगी। उदाहरण के लिए, अगर हम रोटी और उड़द की दाल अथवा रोटी और मांस को देश का राष्ट्रीय भोजन बना दें तो पंजाबी लोग तो मज़े में रहेंगे, लेकिन बिहार और बंगाल के लोगों का हाल बुरा हो जाएगा। इसी तरह, अगर हम यह कानून बना दें कि हर हिंदुस्तानी को चप्पल पहनना ही होगा तो कश्मीर के लोग घबरा उठेंगे, क्योंकि पहाड़ पर चलने वालों के पाँव में चप्पल ठीक-ठीक नहीं चल सकती। पहनावे-ओढ़ावे में भी जगह-जगह भिन्नता मिलती है और पोशाकें भी जलवायु एवं क्षेत्रीय सुविधा के अनुसार ही यहॉ तरह-तरह की फैली हैं।

मगर विविधता का सबसे बडा लक्षण यह है कि हमारे देश में अनेक प्रकार की भाषाएँ फैली हुई हैं और इनके कारण हम आपस में भी अजनबी के समान हो जाते हैं। उत्तर भारत में तो गुजरात से लेकर बंगाल तक की जनता के बीच संपर्क खूब हुआ है, इसलिए वहाँ भाषा-भेद की कठिनाई उतनी नहीं अखरती। लेकिन, अगर कोई उत्तर भारतवासी दक्षिण चला जाए अथवा कोई दक्षिण भारतीय उत्तर चला आए और वह अपनी मातृभाषा के सिवा अन्य कोई भाषा नहीं जानता हो तो सचमुच बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। भाषा-भेद की यह समस्या हमारी राष्ट्रीय एकता की सबसे बड़ी बाधा है। राष्ट्रीय एकता में पहले यह बाधा थी कि पहाड़ों और नदियों को लाँघना आसान नहीं था। मगर, अब विज्ञान के अनेक सुगम साधनों के उपलब्ध हो जाने से वह बाधा दूर हो गई है। आज अगर देश के एक कोने में अकाल पड़ता है तो दूसरे कोने से अनाज वहॉ तुरंत पहुँचा दिया जाता है। इसी प्रकार पहले जब देश के एक कोने में विद्रोह होता था, तब

दूसरे कोने मे पड़ा हुआ राजा जल्दी से फ़ौज भेजकर उसको दबा नहीं सकता था और विद्रोह की सफलता से देश की एकता टूट जाती थी। लेकिन, आज तो देश के चाहे जिस कोने में भी विद्रोह हो, हम दिल्ली से फ़ौज भेजकर उसे तुरत दबा सकते हैं। प्राकृतिक बाधाएँ अब खत्म हो गई हैं। यही कारण है कि आज हमारी एकता इतनी विशाल हो गई है, जितनी विशाल वह रामायण, महाभारत, मौर्य और मुगल ज़मानों में भी नहीं हुई थी। अब भी जो क्षेत्रीय जोश या प्रांतीय मोह बाकी है, वह धीरे-धीरे कम हो जाएगा, क्योंकि इस जोश को पालनेवाली प्राकृतिक बाधाएँ अब शेष नही हैं। मगर, भाषा-भेद की समस्या ज़रा कठिन है और उसका हल तभी निकलेगा जब हिंदीभाषी क्षेत्र में अहिंदी भाषाओं का तथा अहिंदीभाषी क्षेत्रों में हिंदी भाषा का अच्छा प्रचार हो जाए। सौभाग्य की बात है कि इस दिशा मे काम शुरू हो गए हैं और कुछ समय बीतते-बीतते हम इस बाधा पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।

यह तो हुई भारत की विविधता की कहानी। अब ज़रा यह देखने की कोशिश करनी चाहिए कि इस विविधता के भीतर हमारी एकता कहॉ छिपी हुई है। सबसे विचित्र बात तो यह है कि यद्‌यपि हम अनेक भाषाएॅ बोलते हैं (जिनमे 18 भाषाएॅ तो ऐसी हैं, जिन्हें भारत सरकार ने स्वीकृति दे रखी है। ये भाषाएॅ हैं– हिंदी, उर्दू, बॅगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, असमी, पंजाबी, सिंधी, कश्मीरी, संस्कृत, नेपाली, कोंकणी और मणिपुरी) किंतु भिन्न-भिन्न भाषाओं के भीतर बहने वाली हमारी भाव-धारा एक है तथा हम प्रायः एक ही तरह के विचारों और कथा-वस्तुओं को लेकर अपनी-अपनी बोली में साहित्य-रचना करते हैं। रामायण और महाभारत को लेकर भारत की प्रायः सभी भाषाओं के बीच अद्‌भुत एकता मिलेगी, क्योंकि ये दोनों काव्य सबके उपजीव्य रहे हैं। इसके सिवा, संस्कृत और प्राकृत में भारत का जो साहित्य लिखा गया था, उसका प्रभाव भी सभी भाषाओं की जड़ में काम कर रहा है। विचारो की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है। अतएव, भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य हैं जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी अंत में जाकर एक ही साबित होते हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि फ़ारसी लिपि को छोड़ दे तो भारत की अन्य सभी लिपियों की वर्णमाला एक ही है, यद्‌यपि वह अलग-अलग लिपियों में लिखी जाती है। जैसे हम हिंदी में क, ख, ग, आदि अक्षर पढ़ते हैं, वैसे ही ये अक्षर भारत की अन्य लिपियों में भी पढ़े जाते हैं, यद्‌यपि उनके लिखने का ढंग और है।

हमारी एकता का दूसरा प्रमाण यह है कि उत्तर या दक्षिण चाहे जहाँ भी चले जाइए, आपको जगह-जगह पर एक ही संस्कृति के मंदिर दिखाई देंगे, एक ही तरह के आदमियों से मुलाकात होगी जो चंदन लगाते हैं, स्नान-पूजा करते हैं, तीर्थ-व्रत में विश्वास करते हैं अथवा जो नई रोशनी को अपना लेने के कारण इन बातों को कुछ शंका की दृष्टि से देखते हैं। उत्तर भारत के लोगो का जो स्वभाव है, जीवन को देखने की उनकी जो दृष्टि है, वही स्वभाव और वही दृष्टि दक्षिण वालों की भी है। भाषा की दीवार के टूटते ही एक उत्तर भारतीय और एक दक्षिण भारतीय के बीच कोई भी भेद नहीं रह जाता और वे आपस में एक-दूसरे के बहुत करीब आ जाते हैं। असल में, भाषा की दीवार के आर-पार बैठे हुए भी वे एक ही हैं। वे एक धर्म के अनुयायी और संस्कृति की एक ही विरासत के भागीदार हैं, उन्होंने देश की आज़ादी के लिए एक होकर लड़ाई लड़ी और आज उनकी पार्लियामेंट और शासन-विधान भी एक है।

और, जो बात हिंदुओं के बारे मे कही जा रही है, वही बहुत दूर तक मुसलमानों के बारे में भी कही जा सकती है। देश के सभी कोनो में बसने वाले मुसलमानों के भीतर जहाँ एक धर्म को लेकर एक तरह की आपसी एकता है, वहाँ वे संस्कृति की दृष्टि से हिंदुओं के भी बहुत करीब हैं, क्योंकि ज़्यादा मुसलमान तो ऐसे ही हैं, जिनके पूर्वज हिंदू थे और जो इस्लाम-धर्म में जाने के समय अपनी हिंदू-आदतें अपने साथ ले गए। इसके सिवा, अनेक सदियों तक हिंदू-मुसलमान साथ रहते आए हैं और इस लंबी संगति के फलस्वरूप उनके बीच संस्कृति और तहज़ीब की बहुत-सी समान बातें पैदा हो गई हैं जो उन्हें दिनों-दिन आपस में नज़दीक लाती जा रही हैं।

धार्मिक विश्वास की एकता मनुष्यों की सांस्कृतिक एकता को ज़रूर पुष्ट करती है। इस दृष्टि से, एक तरह की एकता तो वह है जो हिंदू समाज मे मिलेगी। लेकिन धर्म के केंद्र से बाहर जो संस्कृति की विशाल परिधि है, उसके भीतर बसने वाले सभी भारतीयों के बीच एक तरह की सांस्कृतिक एकता भी है जो उन्हें दूसरे देशों के लोगों से अलग करती है। संसार के हरएक देश पर अगर हम अलग-अलग विचार करें तो हमें पता चलेगा कि प्रत्येक देश की एक निजी सांस्कृतिक विशेषता होती है जो उस देश के प्रत्येक निवासी की चाल-ढाल, बातचीत, रहन-सहन, खान-पान, तौर-तरीके और आदतों से टपकती रहती है। चीन से आनेवाला आदमी विलायत से आने वालों के बीच नहीं छिप सकता, और यद्यपि अफ्रीका के लोग भी काले ही होते हैं, मगर वे

भारतवासियों के बीच नहीं खप सकते। भारतवर्ष में भी यूरोपीय पोशाकें खूब चली हुई हैं लेकिन, यूरोपीय लिबास में सजे हुए सौ हिंदुस्तानियो के बीच एक अंग्रेज़ को खड़ा कर दीजिए, वह आसानी से अलग पहचान लिया जाएगा। इसी तरह, भारत के हिदू ही नहीं, बल्कि हिदुस्तानी क्रिस्तान, पारसी और मुसलमान भी भारत के बाहर जाने पर आसानी से पहचान लिए जाते हैं कि वे हिदुस्तानी हैं और यह बात कुछ आज पैदा नही हुई है, बल्कि इतिहास के किसी भी काल मे भारतवासी भारतवासी ही थे तथा अन्य देशों के लोगों के बीच वे खप नहीं सकते थे। यही वह सांस्कृतिक एकता या शक्ति है जो भारत को एक रखे हुए है। यही वह विशेषता है जो उन लोगों में पैदा होती है जो एक देश में रहते हैं, एक तरह की ज़िंदगी बसर करते हैं और एक तरह के दर्शन और एक तरह की आदतों का विकास करके एक राष्ट्र के सदस्य हो जाते हैं।

ऊपर एक जगह हमने भूगोल को दोष दिया है कि उसने पहाड़ो और नदियों के द्वारा इस देश को भीतर से बॉट रखा है, जिससे इस देश में क्षेत्रीय जोश और प्रांतीय भावनाओ के विकास के लिए मौका निकल आया है। मगर, हम भूगोल का उपकार भी नहीं भूल सकते। भारत के भीतर यद्यपि, प्रांतीय भेदों को लिए हुए अनेक क्षेत्र मौजूद हैं, लेकिन इन तमाम भिन्नताओं को समेटकर भारत को एक पूर्ण देश बनाने का काम भी हमारे भूगोल ने ही किया। पहाडो और समुद्रों से घिरे हुए इस विशाल देश मे जो एक मौलिक भाव है वह हमारे भूगोल की देन है। भीतर से कुछ-कुछ बँटा हुआ और बाहर से बिलकुल एक, भारत की यह विशेषता बहुत पुरानी है। यह ठीक है कि प्रांतीयता के जोश में आकर कोई-कोई क्षेत्र राष्ट्र की एकता से अलग होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम करने के लिए जब-तब कोशिश करते रहे हैं, मगर यह भी ठीक है कि सारे देश को एकछत्र शासन (चक्रवर्ती राज्य) के अंदर लाने का सपना भी यहॉ बराबर मौजूद रहा है। देश की इस मौलिक एकता के भाव ने प्रांतीयता के सामने कभी भी हार नहीं मानी। भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी शिक्षा यह है कि इस देश में राष्ट्रीयता और प्रांतीयता के बीच बराबर संघर्ष चलता रहा है। कभी तो ऐसा हुआ कि इस एकता में कहीं पर प्रांतीयता ने छेद कर दिया और फिर उस छेद को भरने की कोशिश की जाने लगी।

प्राचीन भारत मे चक्रवर्ती सम्राट कहलाने के लिए यहॉ के राजे अकसर बड़ी-बड़ी लड़ाइयॉ लड़ा करते थे। मगर, इन लड़ाइयो के भीतर सिर्फ़ यही भाव नहीं था कि राजे अपना प्रभुत्व फैलाना चाहते थे। कुछ यह बात भी थी कि इस देश की भौगोलिक

परिस्थिति ही सारे देश को एक देखना चाहती थी और भौगोलिक परिस्थिति की इस प्रेरणा से देश के सभी बड़े राजे इस बात के लिए उद्योग खड़ा कर देते थे कि सारा देश उनके अंदर एक हो जाए।

भूगोल ने भारत की जो चौहद्दी बाँध दी है, उसके साथ दस्तंदाज़ी करने की कोशिश कभी भी कामयाब नहीं हुई। सीमा के बाहर की दुनिया से भारत को अलग रखकर उसे भीतरी एकता के सूत्र में बाँधने की प्रेरणा यहाँ के भूगोल की सबसे बड़ी शिक्षा रही है। और इसी प्रेरणा के कारण वे लोग बराबर असफल रहे जो देश के भीतर के किसी भाग को प्रांतीयता के जोश में आकर एक स्वतंत्र राज्य का रूप देना चाहते थे। भारत का कोई भी भाग समूचे भारत से अलग जाकर स्वतंत्र होने की चेष्टा करे, यह एक अस्वाभाविक बात है। इसी तरह, यह भी अस्वाभाविक है कि हम दुनिया के किसी ऐसे हिस्से को भारत के साथ बाँध रखने की कोशिश करे जो भारत की चौहद्दी के बाहर पड़ता है और जिसे भारत का भूगोल अपने भीतर पचा नहीं सकता। दुनिया के किसी हिस्से को काटकर उसे भारत के साथ मिला रखने का काम उतना ही अप्राकृतिक साबित हुआ है, जितनी हिंदुस्तान के किसी अंग को काटकर उसे अलग ज़िंदा रखने की कोशिश। मौर्यों ने एक समय कंधार (अफगानिस्तान) को भारत मे मिला लिया था लेकिन कंधार भारत में रखा नहीं जा सका। यूनानियों ने पंजाब को काटकर कंधार में मिला लिया था, मगर उनकी भी कोशिश बेकार हुई और पंजाब भारत में वापस आ गया। महमूद गजनवी ने काबुल में बैठकर भारत पर राज करना चाहा, लेकिन इस अस्वाभाविक कार्य में उसे सफलता नहीं मिली। पठान बादशाहों ने दिल्ली में बैठकर पश्चिमोत्तर सीमा के पार की ज़मीन पर हुकूमत करनी चाही, मगर वे भी नाकामयाब रहे। सिंध पर जब मुसलमानों ने पहले-पहल कब्ज़ा किया, तब वे भी चाहते थे कि सिंधु ईरान का अंग रहे और वे ईरान से ही उस पर हुकूमत चलाएँ, लेकिन यह भारत के खिलाफ बात थी, इसलिए उसकी कोशिश भी बेकार हुई। असली बात यह है कि जैसे दुनिया के और भी कई देश दुनिया से अलग और अपने-आप में पूर्ण हैं, वैसे ही प्रकृति ने भारतवर्ष को भी एक स्वतंत्र देश के रूप में सिरजा है, जो दुनिया से अलग और अपने-आप में पूर्ण है तथा जिसके भीतर बसनेवाले सब-के-सब लोग भारतीय हैं।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

मौखिक

1. प्राचीन काल में उत्तर भारत को दक्षिण भारत से मिलाने के लिए क्या-क्या प्रयास किए गए?
2. उत्तरी और दक्षिणी भारत को जोड़ने के प्रयासो की विफलता का मूल कारण था :
   (क) स्वार्थी, अदूरदर्शी और कमज़ोर शासक
   (ख) देश के प्राकृतिक ढाँचे का स्वरूप
   (ग) दोनो क्षेत्रों की जीवन-शैली में विभिन्नता
   (घ) भाषाई विविधता।
3. भारत की एकता को बढ़ावा देने में विज्ञान का क्या योगदान रहा है?

लिखित

1. जलवायु का प्रभाव मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क पर कैसे पड़ता है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
2. भारत मे अनेकता मे एकता विद्‌यमान है। इस एकता को दर्शाने के लिए लेखक ने क्या-क्या प्रमाण दिए है?
3. सभी भारतवासियों के जीवन को एक ही राष्ट्रीय ढग से नहीं चलाया जा सकता है। पक्ष-विपक्ष मे तर्क दीजिए।
4. भारत का भूगोल यदि एक ओर भारत की विविधता का कारण है तो दूसरी ओर उसकी एकता का भी। इस कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिए।
5. स्पष्ट कीजिए कि प्रत्येक देश की एक निजी सांस्कृतिक विशेषता होती है।
6. निम्नलिखित कथनों पर टिप्पणी कीजिए :
   – भाषा की दीवार के टूटते ही एक उत्तर भारतीय और एक दक्षिण भारतीय के बीच कोई भी भेद नही रह जाता है।
   – विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है।
7. भारत के साथ किसी बाहरी हिस्से को जोड़ना या उसके किसी हिस्से को अलग करना अस्वाभाविक बात है। इस कथन की पुष्टि में लेखक ने क्या-क्या उदाहरण दिए हैं?

भाषा-अध्ययन

1. पाठ मे आए प्रांतीयता, क्षेत्रीयता, विविधता, एकता, अनेकता जैसे 'ता' प्रत्यययुक्त कुछ अन्य शब्दो के उदाहरण दीजिए।

2 निम्नलिखित वाक्यो मे सज्ञा पदबंध छॉटिए :

(क) महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दक्षिण के राजे भी आए।

(ख) नदियों के पठारो मे रहने वाले लोग किसान तबीयत के हो जाते हैं।

(ग) स्वार्थी, अदूरदर्शी और कमज़ोर राजाओं के आते ही देश की एकता टूट गई।

(घ) चीन से आने वाला आदमी विलायत से आने वालो के बीच नहीं छिप सकता।

3. निम्नलिखित वाक्यो मे प्रधान उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य बताइए

(क) भारतवर्ष के नक्शे को ध्यान से देखने पर यह साफ़ दिखाई पडता है कि इस देश के तीन भाग प्राकृतिक दृष्टि से बिलकुल स्पष्ट हैं।

(ख) इस देश के प्राकृतिक ढॉचे में ही कोई ऐसी बात थी जो सारे देश को एक रहने देने के खिलाफ़ पडती थी।

(ग) पहले जब देश के एक कोने मे विद्रोह होता था, तब दूसरे कोने में पडा हुआ राजा जल्दी से फौज़ भेजकर उसको दबा नहीं सकता था।

4. निम्नलिखित वाक्यो मे उदाहरण के अनुसार रूपांतरण कीजिए.

— पहाड़ों और नदियों ने भारत को भीतर से काटकर उसके अनेक क्षेत्र बना दिए। (संयुक्त वाक्य मे)

— पहाडों और नदियो ने भारत को भीतर से काटा और उसके अनेक क्षेत्र बना दिए।

(क) उसके बाद विध्या से लेकर कृष्णा नदी के उत्तर का वह भाग है जिसे हम दक्खिनी प्लेटो कहते है। (सरल वाक्य में)

(ख) भाषा-भेद की यह समस्या हमारी राष्ट्रीय एकता की सबसे बडी बाधा है। (मिश्र वाक्य में)

(ग) पहले-पहल अगस्त्य ऋषि ने विंध्याचल को पार करके दक्षिण के लोगों को अपना सदेश सुनाया था।(संयुक्त वाक्य में)

योग्यता-विस्तार

1. 'भीतर से कुछ-कुछ बॅटा हुआ और बाहर से बिलकुल एक।' इस कथन पर कक्षा में परिचर्चा का आयोजन कीजिए।
2. भारत के राजनैतिक मानचित्र में विभिन्न राज्यो की प्रमुख भाषाएँ दर्शाइए।
3. भारत के विभिन्न भागो के निवासियो की वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज़ और प्रमुख उत्सवो के संबध में जानकारी प्राप्त कीजिए और उसे एक परियोजना कार्य के रूप मे प्रस्तुत कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अदूरदर्शी – जो दूर तक न सोच सके

मरुभूमि – रेगिस्तान

उपजीव्य	–	आधार सामग्री
क्रिस्तान	–	ईसाई
बसर	–	गुजर, निर्वाह
तहज़ीब	–	सभ्यता, शिष्टाचार
चौहद्दी	–	किसी स्थान के चारो ओर की सीमा
दस्तंदाज़ी	–	दखल देना
सिरजना (सृजना)	–	बनाना, निर्माण करना
ब्योरा	–	विवरण
अतरीप	–	ऐसा भू-भाग जिसके तीन ओर जल और एक ओर स्थल हो।
अगस्त्य ऋषि	–	एक ऋषि जिन्होने ऋग्वेद की कई ऋचाओ की रचना की। इनका नाम कुंभज भी है। ये पुलस्त्य ऋषि के पुत्र थे। विध्याचल को पार करके दक्षिण भारत जाने वाले यह पहले ऋषि थे।
राजसूय यज्ञ	–	प्राचीन काल मे प्रचलित एक यज्ञ जो बड़े-बडे राजा सम्राट-पद के अधिकारी बनने के लिए करते थे। इस यज्ञ के उपरांत राजा विजय-यात्रा पर निकलता था और अन्य राजाओं को जीतकर सम्राट-पद का अधिकारी होता था।
कुरुक्षेत्र	–	हरियाणा मे स्थित एक नगर। प्राचीनकाल में यहाँ महाभारत का युद्ध हुआ था। यहाँ एक विशाल सरोवर है जिसे ब्रह्म सरोवर कहते है। सूर्य-ग्रहण के दिन यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है।
प्राकृत	–	संस्कृत के बाद मध्यकाल (500 ई.पूर्व से 1000 ई.तक) की एक भाषा। व्यापक अर्थ के अनुसार प्राकृत का प्रारंभिक रूप पाली, मध्यकालीन रूप प्राकृत तथा उत्तर-कालीन रूप अपभ्रंश कहा गया है। इसके मुख्य भेद महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी और पैशाची हैं जिनका उद्भव काल 100 ई से 600 ई. के बीच माना जाता है।
दर्शन	–	वह शास्त्र जिसमे जीव, जगत, ईश्वर, माया आदि का विवेचन किया जाता है।
थार की मरुभूमि	–	राजस्थान का एक रेगिस्तानी क्षेत्र।
यूनान	–	हमारे देश में ग्रीस देश के लिए प्रचलित नाम। यह देश अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है।
चक्रवर्ती राज्य	–	किसी महान सम्राट द्वारा स्थापित राज्य, जिसके अंतर्गत बहुत बड़ा भू-भाग शामिल रहता था।
उद्योग खड़ा करना	–	योजना के अनुसार कार्य करना।
महमूद गजनवी	–	गजनी प्रदेश का शासक, जिसने ग्यारहवी शताब्दी के प्रारंभ में भारत पर अनेक आक्रमण किए। गुजरात के प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर को ध्वस्त करके, वह अपार धन-संपत्ति लूटकर गजनी ले गया।



महादेवी वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में सन 1907 में होली के दिन हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा मिशन स्कूल, इंदौर में हुई। सन 1929 मे उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर भिक्षुणी बनना चाहा, किंतु वैसा न करके महात्मा गांधी के संपर्क में आने पर वे समाज-सेवा की ओर उन्मुख हो गईं। सन 1932 मे उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और नारी-समाज में शिक्षा-प्रसार के उद्देश्य से प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना करके उसकी प्रधानाचार्या के रूप में कार्य करने लगीं। मासिक पत्रिका ***चाँद*** *का भी उन्होंने कुछ समय तक अवैतनिक रूप में सपादन किया। उनका निधन सन 1987 मे हुआ।*

महादेवी वर्मा का कर्मक्षेत्र बहुमुखी रहा है। उन्हे सन 1952 में उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत किया गया। सन 1954 मे वे साहित्य अकादमी दिल्ली की संस्थापक सदस्या बनीं। सन 1960 में उन्हे प्रयाग महिला विद्यापीठ का कुलपति बनाया गया। उनके व्यापक शैक्षिक, साहित्यिक एवं सामाजिक कार्यों के लिए भारत सरकार ने सन 1956 मे उन्हें ***पद्मभूषण*** *अलंकरण से सम्मानित किया। विक्रम, कुमायूँ तथा दिल्ली विश्वविद्यालय ने उन्हे* ***डी. लिट्.*** *की मानद उपाधि से विभूषित किया। सन 1983 में* ***यामा*** *और* ***दीपशिखा*** *पर उन्हें* ***ज्ञानपीठ*** *पुरस्कार से सम्मानित किया गया और फिर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने भी* ***भारत भारती*** *पुरस्कार से सम्मानित किया। साहित्य, दर्शन, संगीत, चित्रकला, प्रकृति एवं पशु-पक्षियो में महादेवी जी की गहरी रुचि रही है। उनकी रचनाओं में इस रुचि-वैचित्र्य को सर्वत्र लक्षित किया जा सकता है। उनके निबंध* ***शृंखला की कड़ियाँ, क्षणदा, संकल्पिता*** *तथा* ***भारतीय संस्कृति के स्वर*** *में सकलित हैं।* ***अतीत के चलचित्र, स्मृति***

की रेखाएँ, पथ के साथी *और* ***मेरा परिवार*** *उनके सस्मरणात्मक रेखाचित्रो के संकलन हैं। कविता और गद्‌य पर उनका समान रूप से अधिकार है।*

महादेवी जी की गद्‌य-शैली सहज एवं प्रवाहपूर्ण है। उसमे तत्सम शब्दों की प्रधानता है। उनकी शैली के दो स्पष्ट रूप दृष्टिगत होते हैं — विचारात्मक एवं भावात्मक। सजीव वर्णन, प्रभावशाली बिंब-योजना एव चित्रात्मकता उनकी शैली की विशेषताएँ हैं।

प्रस्तुत संस्मरण मे लेखिका ने अपने पालित कुत्ते नीलू (साथ ही उसकी माँ लूसी) की जीवन गाथा के साथ जुड़ी स्मृतियों का वर्णन किया है। इस संपूर्ण जीवन-यात्रा मे लेखिका के साथ नीलू के मधुर स्नेहिल संबंधों, क्रियाकलापो, उसकी स्वामिभक्ति, कर्तव्यनिष्ठा, परोपकारी वृत्ति, दर्पयुक्त स्वभाव का वर्णन इतना सहज, स्वाभाविक एवं सरस है कि पाठक यह भूल जाता है कि वह पशुओं की रूपाकृति, स्वभाव, आदतों एवं चारित्रिक गुणों के विषय मे पढ़ रहा है या मनुष्यों के विषय में।

नीलू

नीलू की कथा उसकी माँ की कथा से इस प्रकार जुड़ी है कि एक के बिना दूसरी अपूर्ण रह जाती है।

उसकी अल्सेशियन माँ उत्तरायण मे लूसी के नाम से पुकारी जाती थी। हिरणी के समान वेगवती, साँचे में ढली हुई देह, जिसमें व्यर्थ कहने के लिए एक तोला मांस भी नही था। ऊपर काला आभास देनेवाले भूरे पीताभ रोम, बुद्धिमानी का पता देनेवाली काली, पर छोटी आँखें, सजग खड़े कान और सघन, रोएँदार तथा पिछले पैरो के टखनों को छूनेवाली लंबी पूँछ, सब कुछ उसे राजसी विशेषता देता था। थी भी वह सामान्य कुत्तों से भिन्न।

अल्सेशियन कुत्ता एक ही स्वामी को स्वीकार करता है। यदि परिस्थितियों के कारण एक व्यक्ति का स्वामित्व उसे सुलभ नहीं होता, तो वह सबके साथ सहचर जैसा आचरण करने लगता है। दूसरे शब्दो में, आदेश किसी का नहीं मानता, परंतु सबके स्नेहपूर्ण अनुरोध की रक्षा मे तत्पर रहता है। लूसी की स्थिति भी स्वच्छंद सहचरी के समान हो गई थी।

उत्तरायण से जो पगडडी दो पहाड़ियों के बीच से मोटर मार्ग तक जाती थी, उसके अंत में मोटर स्टाप पर एक ही दुकान थी, जिसमें आवश्यक खाद्य-सामग्री प्राप्त हो सकती थी। शीतकाल में यह दो पर्वतीय भित्तियों का अंतराल बर्फ़ से भर जाता था और उससे पगडंडी के अस्तित्व का चिह्न भी शेष नहीं रहता था। तब दुकान तक पहुँचने में असमर्थ उत्तरायण के निवासी, लूसी के गले में रुपए और सामग्री की सूची के साथ एक अँगोछा या चादर बाँधकर उससे सामान लाने का अनुरोध करते थे। वंश-परंपरा से बर्फ़ में मार्ग बना लेने की सहज चेतना के कारण वह सारे व्यवधान पार कर दुकान तक पहुँच जाती। दुकानदार उसके गले से कपड़ा खोलकर रुपया, सूची आदि लेने के उपरांत

सामान की गठरी उसके गले या पीठ से बाँध देता और लूसी सारे बोझ के साथ बर्फ़ीला मार्ग पार करती हुई सकुशल लौट आती। किसी-किसी दिन उसे कई बार आना-जाना पड़ता था। कभी चीनी मँगवाई और चाय रह गई। कभी आटा याद रहा और आलू भूल गए। पर लूसी को मँगवानेवालो के भुलक्कड़पन से कोई शिकायत कभी नहीं रही। गले में कपडा बाँधते ही वह तीर की तरह दुकान की दिशा में चल देती। उसकी तत्परता के कारण मँगवाने में भूलने की प्रवृत्ति बढ़ती ही थी। एक दिन किसी अधिक ऊँचाई पर बसे पर्वतीय ग्राम से बर्फ़ में भटकता हुआ एक भूटिया कुत्ता दुकान पर आ गया और लूसी से उसकी मैत्री हो गई। उन दोनों में आकृति की वही भिन्नता थी, जो एक तराशी हुई सुडौल मूर्ति और अनगढ़ शिलाखड मे होती है, परंतु दुर्दिन के साथी होने के कारण वे सहचर हो गए।

उन्हीं सरदियों में लूसी ने दो बच्चों को जन्म देकर अपनी वंश-वृद्धि की, किंतु उनमें से एक तो शीत के कारण मर गया और दूसरा अपनी ही जीवन-ऊष्मा के बल पर उस ठिठुरानेवाले परिवेश से जूझने लगा।

शीतऋतु मे प्रायः लकड़बग्घे ऊँचे पर्वतीय अंचल से नीचे उतर आते हैं और बर्फ़ में भटकते हुए मिल जाते हैं। वैसे तो यह हिंसक जीव कुत्ते से कुछ ही बड़ा होता है, परंतु कुत्ता इसका प्रिय खाद्य होने के कारण रक्षणीय की स्थिति में आ जाता है।

सामान्य कुत्ते तो लकड़बग्घे को देखते ही स्तब्ध और निर्जीव से हो जाते हैं, अतः उन्हें घसीट ले जाने में इसे कोई प्रयास ही नहीं करना पड़ता। असामान्य भूटिए या अल्सेशियन कुत्ते उससे संघर्ष करते हैं अवश्य, परंतु अंततः पराजित ही होते हैं। 4-5 दिन के बच्चे को छोड़कर लूसी फिर दुकान तक आने-जाने लगी थी।

एक संध्या के झुटपुटे में लूसी ऐसी गई कि फिर लौट ही नहीं सकी। बर्फ़ के दिनों में साँझ ही से सघन अंधकार घिर आता है और हवा ऐसी तुषार बोझिल हो जाती है कि गंध भी वहन नही कर पाती। इसी से प्रायः शीतकाल में घ्राणशक्ति के कुछ कुंठित हो जाने के कारण कुत्ते लकड़बग्घे के आने की गंध पाने में असमर्थ रहते हैं और उसके अनायास आहार बन जाते हैं। सवेरे बर्फ़ पर कई बड़े-छोटे पंजों के तथा आगे-पीछे घसीटने-घिसटने के चिह्न देखकर निश्चय हो गया कि लूसी ने बहुत संघर्ष के उपरांत ही प्राण दिए होंगे। बर्फ़ पर रक्त के पनीले धब्बे ऐसे लगते थे, मानो किसी बालक की ड्राइंग-पुस्तिका के सफ़ेद पृष्ठ पर लाल स्याही की दवात उलट गई हो।

लूसी के लिए सभी रोए, परंतु जिसे सबसे अधिक रोना चाहिए था, वह बच्चा तो कुछ जानता ही न था। एक दिन पहले उसकी आँखें खुली थीं, अतः माँ से अधिक वह दूध के अभाव में शोर मचाने लगा। दुग्ध चूर्ण से दूध बनाकर उसे पिलाया, पर रजाई में भी वह माँ के पेट की उष्णता खोजता और न पाने पर रोता-चिल्लाता रहा। अंत में हमने उसे कोमल ऊन और अधबुने स्वेटर की डलिया में रख दिया, जहाँ वह माँ के सामीप्य-सुख के भ्रम में सो गया। डलिया में वह ऊन की गेंद जैसा ही लगता था।

आने के समय उसे अपने साथ प्रयाग लाना पड़ा। बड़े होने पर देखा कि वह अपनी माँ के समान ही विशिष्ट है। भूटिए बाप और अल्सेशियन माँ के रूप-रंग ने उसे जो वर्णसंकरता दी थी, उसके कारण न वह अल्सेशियन था न भूटिया।

रोमों के भूरे, पीले और काले रंगों के सम्मिश्रण से जो रंग बना था, वह एक विशेष प्रकार का धूपछाँही हो गया था। धूप पड़ने पर एक की झलक मिलती थी, छाँह में दूसरे की और दीये के उजाले में तीसरे की। कानों की चौड़ाई और नुकीलेपन में भी कुछ नवीनता थी। सिर ऊपर की ओर अन्य कुत्तों के सिर से बडा और चौडा था और नीचे लंबोतरा, पर सुडौल। पूँछ अल्सेशियन कुत्तों की पूँछ के समान सघन रोमों से युक्त, पर ऊपर की ओर मुड़ी कुंडलीदार थी। पैर अल्सेशियन कुत्ते के पैरों के समान लंबे, पर पंजे भूटिए के समान मज़बूत, चौड़े और मुड़े हुए नाखूनो से युक्त थे। शरीर में ऊपर का भाग चौड़ा, पर नीचे का पतले पेट के कारण हलका और तीव्र गति का सहायक था। आँखें न काली थीं, न भूरी और न कंजी। उन गोल और काली कोरवाली आँखों का रंग शहद के रंग के समान था, जो धूप में तरल सुनहला हो जाता था और छाया में जमे हुए मधु-सा पारदर्शी लगता था।

आकृति की विशेषता के साथ उसके बल और स्वभाव में भी विशेषता थी। ऊँची दीवार को भी वह एक छलाँग में पार कर लेता था। नीलू का स्वर इतना भारी, मंद और गूँजनेवाला था कि रात्रि में उसका एक बार भौंकना भी वातावरण की स्तब्धता को कंपित कर देता था। अन्य कुत्तों के समान खाने के लिए लालायित रहना, प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए पूँछ हिलाना, कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए चाटना, याचक के दीनभाव से स्वामी के पीछे-पीछे घूमना, अकारण भौंकना, काटना आदि प्रकृतिदत्त स्वान-गुणों का उसमें सर्वथा अभाव था।

मैंने अनेक कुत्ते देखे और पाले हैं, किंतु कुत्ते के दैन्य से रहित और उसके लिए अलभ्य दर्प से युक्त मैंने केवल नीलू को ही देखा है। उसके प्रिय-से-प्रिय खाद्य को भी

यदि अवज्ञा के साथ फेंककर दिया जाता, तो वह उसकी ओर देखता भी नही, खाना दूर की बात है।

यदि उसे किसी बात पर झिड़क दिया जाता, तो बिना बहुत मनाए वह मेरे सामने ही न आता।

विगत बारह वर्षो से उसका बैठने का स्थान मेरे घर का बाहरी बरामदा ही रहा, जिसकी ऊपरी सीढ़ी पर पोर्टिको के सामने बैठकर वह प्रत्येक आने-जाने वाले का निरीक्षण करता रहता। मुझसे मिलने वालों में वह प्रायः सबको पहचानता था। किसी विशेष परिचित को आया देखकर वह सदर्प धीरे-धीरे भीतर आकर मेरे कमरे के दरवाज़े पर खड़ा हो जाता। उसका इस प्रकार आना ही मेरे लिए किसी मित्र की उपस्थिति की सूचना थी। मुझसे 'आ रही हूँ' सुनने के उपरांत वह पुनः बाहर अपने निश्चित स्थान पर जा बैठता।

न जाने किस सहज चेतना से वह अपरिचित या असमय आए व्यक्ति को जान लेता था, तब नितांत निरपेक्ष और उदासीन भाव से उसका घंटी बजाना, नौकर का आकर समाचार ले जाना आदि देखता रहता।

कुत्ते भाषा नहीं जानते, ध्वनि पहचानते हैं। नीलू का ध्वनि-ज्ञान इतना विस्तृत और गहरा था कि उससे कुछ कहना भाषा जानने वाले मनुष्य से बात करने के समान हो जाता था। बाहर या रास्ते मे घूमते हुए यदि कोई उससे कह देता – 'गुरुजी तुम्हें ढूँढ़ रही थीं नीलू' तो वह विद्युत गति से चहारदीवारी कूदकर मेरे कमरे के सामने आदेश की प्रतीक्षा में आकर खड़ा हो जाता। फिर 'कोई काम नहीं है, जाओ' कहने के पहले वह मूर्तिवत एक स्थिति में ही खड़ा रह जाता। कभी-कभी मैं किसी कार्य में व्यस्त होने के कारण उसकी उपस्थिति जान ही नहीं पाती और उसे बहुत समय तक बिना हिले-डुले खड़ा रहना पड़ता।

हिंसक और क्रोधी भूटिए बाप और आखेटप्रिय अल्सेशियन माँ से जन्म पाकर भी उसमें हिंसा प्रवृत्ति का कोई चिह्न नहीं था। तेरह वर्ष के दीर्घ जीवन में भी उसे किसी पशु-पक्षी पर झपटते या मारते नहीं देखा गया। उसका यह स्वभाव मेरे लिए ही नही, सब देखने वालों के लिए आश्चर्य की घटना थी।

मेरे बँगले के रोशनदानों में प्रायः गौरैया तिनकों से घोंसला बना लेती हैं ! मुझे उनके परिश्रमपूर्वक बनाए हुए घोंसले उजाड़ना अच्छा नहीं लगता, अतः कालांतर में उनमें अंडों और पक्षी-शावकों की सृष्टि बस जाती है। कुछ-कुछ अंकुर जैसे पंख निकलते ही वे पक्षी-

शावक उड़ने के असफल प्रयास में रोशनदानों से नीचे गिरने लगते हैं। इन दिनों नीलू उनके सतर्क पहरेदार का कर्तव्य सँभाल लेता था। उसके भय से कोई भी अन्य कुत्ता-बिल्ली उन नादान उड़ने-गिरने वालों को हानि पहुँचाने का साहस नहीं कर पाता था। कभी-कभी बहुत छोटे पक्षी-शावकों को पुनः घोंसले में रखवाने के लिए वह उन्हें हौले से मुख में दबाकर मेरे पास ले आता था। जब तक रोशनदान में सीढ़ी लगवाकर मैं उस बच्चे को घोंसले में पहुँचाने की व्यवस्था न कर लेती, तब तक वह या तो बड़ी कोमलता से उसे मुँह में दबाए खड़ा रहता या मेरे हाथ में देकर प्रतीक्षा की मुद्रा में देखता रहता। सवेरे नियमानुसार जब मैं मोर, खरगोश आदि को दाना देने निकलती, तब वह, चाहे जाड़ा हो चाहे बरसात, मुझे दरवाज़े पर ही मिलता और मेरे साथ-साथ घूमता। पक्षियों के कक्ष में दो फुट ऊँची दीवार पर जाली लगी हुई है। नीलू दीवार पर दोनों पंजे रखकर खड़ा हो जाता और अपनी गोल आँखें घुमाकर मानों प्रत्येक कक्ष और उसमे रहने वालो का निरीक्षण-परीक्षण करता रहता। उसके इस नियम में कभी व्यतिक्रम नहीं पड़ा।

उसका रात का कर्तव्य भी स्वेच्छा-स्वीकृत और निश्चित था। सबके सो जाने पर वह गरमियों में बाहर लॉन पर और सरदियो में बरामदे में तख्त पर बैठकर पहरेदारी का कार्य करता। रात में कई-कई बार वह पूरे कंपाउंड का और पशु-पक्षियों के घर का चक्कर लगाता रहता। रात चाहे उजाली हो, चाहे बादल गरज रहे हों, चाहे आँधी चल रही हो, उसके चक्कर को विराम नहीं था। रात के सन्नाटे मे उसके मंद-गंभीर स्वर से ही हम अनुमान लगा पाते थे कि वह किस कोने में पहरा दे रहा है।

खरगोश धरती के भीतर सुरग जैसे लंबे और दोनो ओर द्‌वार वाले बिल खोद लेते हैं। एक रात मेरे खरगोश बिल खोदते-खोदते पड़ोस के दूसरे कंपाउड मे जा निकले और उनमें से कई जो इस अभियान में अगुआ थे, जंगली बिल्ले द्‌वारा क्षत-विक्षत कर दिए गए। सुरंग से बाहर आने वालों का जो हाल होता है, उससे भीतर रहनेवाले अनजान रहते हैं, अतः एक के पीछे एक निकलते हुए खरगोशों में सभी को मार्जारी या शृगाल का आहार बन जाना पड़ता। किंतु उनके सौभाग्य से पहरे के नित्यक्रम में घूमते हुए नीलू ने संभवतः पत्तियों की सरसराहट से सजग होकर चहारदीवारी के पार देखा होगा और शीत की कुहराच्छन्न रात की मलिन चाँदनी में भी उसने खरगोशों के संकट को पहचान लिया होगा।

उसके कूदकर दूसरी ओर पहुँचते ही बिल्ला तो भाग गया, परंतु खरगोशों को बाहर निकलने से रोकने के लिए वह रात भर ओस से भीगता हुआ सुरंग के द्‌वार पर खड़ा रहा।

यह परोपकार नीलू के लिए बहुत महँगा पड़ा, क्योकि उसे सरदी लगने से न्यूमोनिया हो गया और कई दिनों तक इंजेक्शन, दवा आदि का कष्ट झेलना पड़ा। वैसे वह शांत भाव से कड़ुई दवा भी पी लेता था और सूई भी लगवा लेता था।

एक बार जब मोटर-दुर्घटना में आहत हो मुझे मार्ग से ही अस्पताल जाना पड़ा, तब संध्या तक मेरी प्रतीक्षा करके और कपड़े, चादर, कंबल आदि सामान अस्पताल से ले जाने वालों की हड़बड़ी देखकर उसकी सहज चेतना ने किसी अनिष्ट का आभास पा लिया।

जो भी उस संध्या को मेरे बँगले पर पहुँचा, वह नीलू की विषादमयी निश्चेष्ट मुद्रा देखकर विस्मित हुए बिना नहीं रहा।

जब तीन दिन तक उसने न कुछ खाया न पिया, तब डॉक्टर से अनुमति लेकर उसे अस्पताल लाया गया।

पट्टियों के घटाटोप मे मुझे अच्छी तरह देखने के लिए वह पलंग के चारों ओर घूमने लगा और फिर आश्वस्त होकर प्रहरी की चिरपरिचित मुद्रा में मेरे पलंग के नीचे जा बैठा। दो घंटे बाद बहुत समझाने-पुचकारने के उपरांत ही उसे घर पहुँचाया जा सका।

तब से हर दूसरे दिन अस्पताल न ले जाने पर वह अनशन आरंभ कर देता। इस प्रकार अस्पताल में भी वह नियमित रूप से मिलने आने वालो मे गिना जाने लगा और डॉक्टर, नर्से सब उससे परिचित हो गए।

नीलू को चौदह वर्ष का जीवन मिला था और जन्म से मृत्यु के क्षण तक वह मेरे पास ही रहा, अतः उससे संबद्ध घटनाओं और संस्मरणो की संख्या बहुत अधिक है।

कुत्तो में वह केवल कजली के सामीप्य से ही प्रसन्न रहता था, परंतु कजली और बादल एक क्षण के लिए भी एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकते थे। परिणामतः नीलू बेचारा एकाकी ही रहा।

जीवन के समान उसकी मृत्यु भी दैन्य से रहित थी 'कुत्ते की मौत मरना' कहावत है, परंतु यदि नीलू के समान शांत, निर्लिप्त भाव से कोई मृत्यु का सामना कर सके, तो ऐसी मृत्यु मनुष्य को भी काम्य होगी।

मेरे पास अनेक जीव-जंतु हैं, परंतु जिसके बुरा मान जाने की मुझे चिंता हो, ऐसा अब कोई नहीं है।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

मौखिक

1. उत्तरायण के निवासी लूसी से सामान मँगवाने के लिए क्या करते थे?
2. भूटिया कुत्ते और लूसी की आकृति मे क्या भिन्नता थी?
3. लेखिका को मित्र के आने की सूचना नीलू से कैसे मिलती थी?
4. नीलू को एकाकी क्यों रहना पड़ा?
5 नीलू ने किस प्रकार 'कुत्ते की मौत मरना' मुहावरे को झुठला दिया?

लिखित

1. लूसी की स्थिति स्वच्छंद सहचरी के समान क्यो हो गई थी?
2. लूसी के अभाव में उसके बच्चे को पालने के लिए क्या प्रयास किए गए?
3. नीलू की रूपाकृति अपनी माँ की रूपाकृति से किस प्रकार अलग थी?
4. नीलू ने खरगोशों की प्राण रक्षा किस प्रकार की?
5. नीलू के स्वभाव की कौन-सी विशेषताएँ उसे अन्य कुत्तो से अलग करती हैं?
6. पाठ से उन अंशो को छाँटिए, जिनमे लेखिका के प्रति नीलू का स्नेह प्रकट होता है।

योग्यता-विस्तार

1. महादेवी वर्मा ने अपने द्वारा पाले गए अनेक जीव-जंतुओ, यथा–सोना, गौरा, निक्की, रोज़ी, रानी फ्लोरा के बारे में संस्मरण लिखे हैं। उन्हे पढ़िए और उनमें से आपको जो अधिक रोचक लगें, उसकी विशेषताएँ भित्तिपत्रिका पर प्रस्तुत कीजिए।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों मे प्रयुक्त उपसर्ग छाँटकर लिखिए:
   सकुशल, सुडौल, दुर्दिन, निर्जीव।
2. निम्नलिखित शब्दों मे प्रयुक्त प्रत्यय छाँटकर लिखिए:
   पर्वतीय, बर्फ़ीला, कुंडलीदार, नुकीलेपन, विषादमयी, सरसराहट, रोशनदान।
3. निम्नलिखित वाक्यों से संज्ञा पदबंध छाँटकर लिखिए:
   (क) उसकी अल्सेशियन माँ उत्तरायण में लूसी के नाम से पुकारी जाती थी।
   (ख) रोमों के भूरे, पीले और काले रगों के सम्मिश्रण से जो रंग बना था, वह एक विशेष प्रकार का धूपछाँही हो गया था।

(ग) उन गोल और काली कोरवाली ऑखो का रंग शहद के रंग के समान था।

(घ) हिंसक और क्रोधी भूटिए बाप और आखेटप्रिय अल्सेशियन मॉ से जन्म पाकर भी उसमें हिंसा प्रवृत्ति का कोई चिह्न नही था।

4. निम्नलिखित वाक्यों मे से मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य छॉटिए:

(क) सरदियों में लूसी ने दो बच्चो को जन्म देकर अपनी वंश-वृद्धि की कितु उनमे से एक तो शीत के कारण मर गया।

(ख) उसके प्रिय-से-प्रिय खाद्य को भी यदि अवज्ञा के साथ फेंककर दिया जाता, तो वह उसकी ओर देखता भी नही, खाना दूर की बात है।

(ग) सामान्य कुत्ते तो लकड़बग्घे को देखते ही स्तब्ध और निर्जीव से हो जाते हैं, अतः उन्हें घसीट ले जाने मे इसे कोई प्रयास ही नहीं करना पड़ता।

(घ) नीलू का स्वर इतना भारी, मंद और गूँजनेवाला था कि रात्रि मे उसका एक बार भौकना भी वातावरण की स्तब्धता को कंपित कर देता था।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अल्सेशियन – कुत्तो की एक नस्ल
राजसी – राजाओ-महाराजाओं सा
स्वच्छंद – अबाध, स्वतंत्र
व्यवधान – रुकावट
अनगढ़ शिलाखंड – ऊबड़-खाबड़ पत्थर
जीवन-ऊष्मा – जीवन की ऊर्जा, शक्ति
स्तब्ध – हक्का-बक्का हो जाना
भूटिया – कुत्ते की एक नस्ल (पहाडी क्षेत्र मे अधिक पाया जाता है।)
तुषार – बर्फ़
पनीले – जलयुक्त, फीका
वर्णसंकरता – दो भिन्न जातियों से उत्पन्न
कंजी – गहरे खाकी रग की
स्तब्धता – सन्नाटा
अलभ्य दर्प – अप्राप्य (असाधारण) गर्व
अवज्ञा – उपेक्षा
निरपेक्ष – तटस्थ
व्यतिक्रम – क्रम रहित

भगवतीशरण सिंह



भगवतीशरण सिंह का जन्म सन 1919 में वाराणसी में हुआ था। उनकी उच्च शिक्षा वाराणसी तथा इलाहाबाद में हुई। भारत सरकार की प्रशासनिक सेवा में उनका चयन हुआ और उन्होने उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा भारत सरकार की केंद्रीय सेवा मे अनेक उच्च पदो पर कार्य किया। उन्होंने सन 1977 में उत्तर प्रदेश शासन-सेवा मे आयुक्त तथा सचिव पद से अवकाश ग्रहण किया।

अपने प्रशासनिक दायित्व को पूरा करते हुए उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने नागरी लिपि सुधार समिति के सदस्य सचिव, वैज्ञानिक शब्दावली समिति के सचिव, उत्तर प्रदेश सूचना विभाग के निदेशक, स्वतंत्रता संग्राम इतिहास-लेखन सलाहकार समिति के सदस्य तथा उत्तर प्रदेश हिंदी समिति के सचिव आदि पदों पर रहकर स्वयं को हिंदी-साहित्य से जोड़े रखा।

भगवतीशरण सिंह का निधन सन 1988 में हुआ।

उनका लेखन-कार्य सन 1938 में कहानी-लेखन और वैयक्तिक निबंधों से शुरू हुआ। वे सदैव हिंदी-साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियों से जुड़े रहे और अनेक विधाओं में साहित्य का सृजन करते रहे। उनकी लगभग बीस पुस्तके प्रकाश में आ चुकी हैं जिनमें **अपराजिता, जंगल और जानवर** *(कहानी संग्रह),* **मानव के मूल में, साहित्य : पहचान और पहुँच** *(निबंध सग्रह),* **हमनील, वन पाहुन** *(प्रकृति और वन) विशेष उल्लेखनीय हैं।*

नदी बहती रहे *– निबंध उनकी 'वन पाहुन' पुस्तक से लिया गया है। इस निबंध मे लेखक ने भारत को नदियों का देश कहा है और बतलाया है कि नदियाँ*

किस प्रकार भारत की आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन की समृद्धि में अपना योगदान करती रही हैं। वन-पर्वत और नदी के अटूट पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करते हुए वनों की महत्ता को विशेषरूप से रेखांकित किया गया है और वन-व्यवस्था के सुधार के लिए कुछ मौलिक सुझाव भी दिए गए हैं। पर्यावरण प्रदूषण तथा निरंतर होनेवाले जल प्रदूषण से लेखक दुःखी है और चाहता है कि वन उगते रहे, फूलते और फलते रहें, पर्वत वनस्पति से ढँके रहें और नदी निरंतर बहती रहे।



नदी बहती रहे

भारत नदियो का देश रहा है। इसलिए नहीं कि इस देश में नदियों की ही अधिकता है, बल्कि इसलिए कि इस देश में नदियों का विशेषरूप से सम्मान हुआ है। वे हमारे जीवन में बहुत महत्त्व रखती रही हैं। उनसे हमारा आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन समृद्ध हुआ है। आज वे अपना प्राचीन महत्त्व खोती जा रही हैं। प्राचीन ग्रंथो में विशेषकर वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों मे हमारे वनों, पर्वतों और नदियों के बारे में प्रचुर सामग्री मिलती है।

नदियो को देवियों का स्वरूप प्रदान किया गया। हर संकल्प में जिस 'जंबूद्वीपे भरत-खंडे' का उच्चारण प्रत्येक भारतीय सुनता रहता है, वह नदियों का यह आवाहन भी सुनता रहता है–

'गंगे यमुने चैव गोदावरी सरस्वती। नर्मदे-सिंधु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।'

इन नामों को सुनने वाला भारतीय न केवल सात प्रमुख नदियों का नाम जानता रहता है, वरन उसे भारत की एकता का भी ज्ञान होता रहता है।

जिस प्रकार वनो का वृक्षों से, नदियों का जल से संबंध है, उसी प्रकार नदियों का वनों से भी संबंध मानना चाहिए। वनों के रहते नदियाॅ स्वतः फूट पड़ती हैं, प्रवाहित होती रहती हैं। वन नहीं रहेंगे तो नदियाँ नहीं रहेंगी। नदियों के न रहने पर हमारी संस्कृति विच्छिन्न हो जाएगी। हमारा जीवन-स्रोत ही सूख जाएगा। अतः वनो की आवश्यकता और महत्ता को अस्वीकार करके न तो हम आर्थिक उन्नति के सोपान गढ़ सकते हैं और न स्वास्थ्य और सुख की कल्पना ही कर सकते हैं।

आदमी की ज़िदगी अपने-आप में बहुत ही अकेली और नीरस होती है। आदमी-आदमी के रिश्ते-नाते उसका बहुत दूर तक साथ नहीं देते। पर जब वह इनसे आगे बढ़कर एक व्यापक संबंध कायम करने की कोशिश करता है, तो उसके साथ वन, पर्वत, नदी आदि

सब चल पड़ते हैं। तब वह अकेला नहीं रह जाता। आज वह वनस्पतियों और पानी के रिश्ते को भूलकर अपने को भी अकेला बना रहा है और उनके आपसी संबंधों का भी विच्छेद करता जा रहा है। गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा और कावेरी आज भी भारत में बह रही हैं पर अब वे मोक्षदायिनी नहीं रह गई हैं।

गंगा की उन्नीस प्रमुख सहायक नदियाँ बताई गई हैं। गंगा के ऊपरी प्रवाह में अलकनंदा, मंदाकिनी के जल से आपूरित होकर इसमें मिलती है तत्पश्चात रामगंगा, गोमती, धूतपापा, तमसा, सरयू (घाघरा), गंडकी, कमला, कौशिकी (कोसी), शोण आदि नदियॉ अपने जल में नागर क्षेत्रों का मल एकत्र करती हुईं, बड़े-बड़े कल-कारखानों का उच्छिष्ट बटोरती हल्दिया के पास सागर संगम करती हैं। भागीरथी और पद्मा के अतिरिक्त उसमें कई अन्य नदियों का भी जल मिलता है। फिर भी पानी के बहाव की कमी के कारण वहाँ इसमें बड़े-बड़े सिकतामेरु बन जाते हैं जो जहाज़ों को आने से रोकते रहते हैं। जब इस पुण्यतोया नदी का यह हाल हो रहा है तो औरों का क्या कहा जाए।

गंगा के डेल्टा के समुद्रांत छोर ने वनाच्छादित एक विस्तृत दलदली क्षेत्र को घेर रखा है जिसे सुंदरवन कहा जाता है। इस सुंदरवन की दर्दनाक दशा की खबरें आए दिन अखबारों में छपती रहती हैं। अब सुंदरवन भी सुंदर नहीं रह गया। गंगा का केवल पौराणिक महत्त्व ही नहीं है। उसे आज के संदर्भ में भी देखना होगा।

यही हाल यमुना का भी है। यह गंगा की पहली तथा बड़ी पश्चिमी सहायक नदी है। यह हिमालय पर्वतमाला में कामेत पर्वत के आगे से निकलती है।

जरा-सा भी ध्यान दिया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सारा भारत आज भी प्रमुख नदियों के समूह में बँटा हुआ है। मध्य देश में गंगा-यमुना समूह, पूर्व में ब्रह्मपुत्र-मेघना समूह, पश्चिम मे नर्मदा-ताप्ती समूह, दक्षिण-पूर्व (उड़ीसा) में महानदी समूह हैं। दक्षिण भारत में कृष्णा नदी-समूह और कावेरी नदी-समूह। सिंधु नदी-समूह की बात अब नहीं की जा सकती। इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र-मेघना समूह से सिंचित अधिकांश क्षेत्र अब बंगलादेश ही है। पर सरस्वती-दृषद्वती समूह से अनुप्राणित भू-भाग अभी भी भारत में ही हैं। कुछ नदियों के विस्तृत विवरण के सहारे प्राचीन भारत के इतिहास पर, विशेषकर उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इन नदियों के किनारे बसे नगर या तो विशाल एवं शक्तिशाली राज्यों की राजधानियाँ थे अथवा शिक्षा और व्यवसाय के केंद्र। मंदिरों की भी स्थापना इनके किनारे हुई। इस कारण ये हमारी

स्थापत्यकला की भी स्मृतियॉ जगाती रहती हैं। इन मंदिरों का प्रश्रय पाकर जिस प्रकार संगीत, नृत्य और नाट्य-कला की सृष्टि और संवर्धन हुआ उसमे भी इन नदियों का महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

भारतीय-भू-भौगोलिक स्थिति को ठीक-ठीक समझने के लिए यहॉ के पर्वत-समूहों और नदी-समूहों का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है। इन पर्वत और नदी-समूहो के परिप्रेक्ष्य में भी भारत का पूरा चित्र बनता ही नहीं, जब तक उसकी वनराजि को सम्मिलित न किया जाए। कालिदास के समय तक भी इस देश का अधिकांश भाग जंगलों से आवृत्त था। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी ईसापूर्व तक इस देश में 'स्वयंजात वन' की स्थिति बनी रही। इसके उदाहरणस्वरूप कुरुप्रदेश के कुरुजगल वन्य क्षेत्र को उपस्थित किया जा सकता है। साकेत में अंजनवन तथा वैशाली और कपिलवस्तु मे महावन प्राकृतिक (स्वयंजात) वन थे। वैशाली नगर के बाहर महावन निरंतर हिमालय तक फैला हुआ था। कपिलवस्तु के महावन की भी यही दशा थी। कौशांबी से कुछ दूर और श्रावस्ती के तट मे पारिलेण्यकवन था, जिसमे हाथी रहते थे। रोहिणी नदी के तट पर स्थित लुंबिनी वन भी एक प्राकृतिक जंगल था। इस प्रकार यह देश नदियों, पर्वतों और वनों से भरा-पूरा संसार के देशों मे अतुलनीय था। पर मानव आवादी कम थी।

आज स्थिति कुछ दूसरी ही है। भारत की विशाल और बढ़ रही आबादी के लिए पानी की माँग, घरेलू उपयोग, कृषि-उद्योग, मछली-पालन उद्योग, नौवहन, विद्युत उत्पादन के लिए पूरी की जानी है। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि सारे देश में जल-प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव पड रहा है। इस संबंध में दूषित पानी से उत्पन्न होनेवाली छूत की वीमारियो, जैसे– हैज़ा, पीलिया, टाइफ़ाइड तथा मछलियों और कृषि उपज को हो रही हानि का उल्लेख किया जा सकता है। उत्तर मे डल झील से लेकर दक्षिण में पेरियार और यालियार नदियों तक, पूरब में दामोदर और हुगली से लेकर पश्चिम में थाणा की सॅकरी खाड़ियों तक, सब जगह जल-प्रदूषण की स्थिति चिंता का विषय बनी हुई है। यहाँ तक कि गगा जैसी बारह-मासी नदियॉ भी जल-प्रदूषण से बहुत अधिक ग्रस्त हैं। मानव बस्तियो और उद्योगों का गंदा पानी सीधे जल-प्रवाह में मिल जाता है जो अधिकांश रूप से उपयोग करने लायक नहीं रह जाता। रोज़ाना जिस प्रकार गंदा पानी छोड़ा जा रहा है उससे प्राकृतिक जल, जैसे – नदियों, खाडियों और समुद्र तटवर्ती पानी को खतरा

पैदा हो गया है। अतः ऐसी स्थिति मे न कश्मीर ही स्वर्ग रह गया और न काशी ही तीन लोक से न्यारी रह गई। जब गंगा गंगा न रही, तब काशी की क्या स्थिति रहेगी?

इस देश की नदियाँ ही इसकी श्री रही हैं। जिस देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या नदियो के घाटी-क्षेत्र में निवास कर रही हो, उसे जब पुराणों में असंख्य नदियों का देश कहा गया तो अतिशयोक्ति नहीं थी। जब यह तथ्य सामने आ गया है तो आवश्यकता इस बात की है कि प्रदेशों के कृषि-विभाग और वन-विभाग तथा सिंचाई आदि विभागो की अलग-अलग अमलदारी समाप्त कर दी जाए। हर प्रदेश में जलागम-क्षेत्र अधिकरणों की स्थापना करके विकास की योजनाएँ एक ही अधिकरण के अधीन इस प्रकार समन्वित करके चलाई जाएँ कि देश के स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि की समग्रता सदा आँख के सामने बनी रहे और ऐसा न होने पाए कि एक ही शरीर का एक हाथ दूसरे हाथ को काटता रहे और शरीर भी नष्ट होता रहे। ज़ाहिर है कि वनों और नदियों का बड़ा घनिष्ठ संबंध है और वन नदियों को न केवल उथली होने से बचाते हैं वरन भूमिगत जल को सुरक्षित रखकर नदी के पानी की कमी को भी पूरा करते रहते हैं। भारत में वनों से आच्छादित भूमि का अभाव दिनों-दिन तेज़ी से बढ़ता जा रहा है।

भारत में वन्य पशुओं और पक्षियो, वनस्पतियों और जलाशयों की विविधता और बहुलता को सभी मानते रहे हैं। इस संबंध में योजना आयोग का उद्धरण आवश्यक जान पड़ता है –"भारत पशु तथा प्राणी-संपदा से भरपूर होने के कारण प्राकृतिक जीवित ससाधनों की विपुल विविधता से संपन्न देश है, जिस पर लाखों व्यक्ति अपने निर्वाह के लिए आश्रित हैं तथा जलभूमि के उचित प्रबध द्वारा जहॉ देश की मूलभूत जैविक उत्पादकता का संरक्षण पारिस्थितिकीय दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, वहाँ इसकी आनुवंशिक विविधता की रक्षा तथा उसकी प्रजातियों और पारिस्थितिकीय व्यवस्था का संरक्षण केवल उन्हें लगातार उपयोग में लाने की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि हमारे लोगों के भावी अस्तित्व तथा विकास के लिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। निरंतर तेज़ी से बढती जा रही जनसंख्या के दबाव के कारण लुप्त होती जा रही प्रजातियों तथा पारिस्थितिकीय व्यवस्थाओं के फलस्वरूप तथा प्राकृतिक पर्यावरण के योजनाविहीन विकास के कारण हमारी प्रजातियों के प्राकृतिक आवास शीघ्रता से समाप्त अथवा कुछ बदलते जा रहे हैं।"

चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों के स्वयंजात वन नष्ट हो गए हैं, जहॉ-जहॉ भी दुर्लभ जाति के पशु-पक्षी और वनस्पतियाँ मिलती हैं वे सब प्रायः पहाड़ी क्षेत्र हैं और बढ़ती हुई आबादी

के कारण चूँकि इनका नाश रोकना संभव नहीं है अत: इनकी किस्मों की रक्षा अब राष्ट्रीय उद्यानों में ही संभव है। साथ ही इस बात की भी आवश्यकता है कि वन विभाग स्वयंजात वनों मे उगनेवाली वनस्पतियों को वनीकरण की नीति में विशेष स्थान दे, खासकर ऐसी दशा में जबकि यह स्वीकार कर लिया गया है कि वनों का मुख्य उद्देश्य राजस्व में वृद्धि करना नहीं है। वन जिस समृद्धि की रक्षा करते रहे हैं और जो वह कर सकते हैं, उसके बारे में योजना आयोग का मत स्पष्ट है : "वे हमारे लोगों के भावी अस्तित्व तथा विकास के लिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।"

ऊपर के उद्धरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वनों, पर्वतों और नदियों का बहुत नज़दीकी रिश्ता है। ये तीनों ही एक साथ रहते हैं और एक साथ वन और नदियाँ मैदानों में उतरती हैं। लेकिन जिस प्रकार की वन-व्यवस्था आज है उसमें न तो वनस्पतियों, न वन्य पशुओं और न ही नदियो की रक्षा संभव है। वनों का उपयोग उद्योग और व्यापार में होगा। इससे विरत नहीं हुआ जा सकता। वनों की उपयोगिता मानव की समग्र समृद्धि के लिए है। समृद्धि की इस समग्रता में उसकी आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक समृद्धियाँ शामिल हैं।

देशी पौधों की बात करना और उनकी पहचान में घूमना अब पागलपन में गिना जाने लगा है। पढ़े-लिखे और तथाकथित शिक्षित लोग ऐसी बातों को उपहासास्पद मानते हैं और उन पर बात करना समय का अपव्यय मानते हैं। अब साहित्य में भी उनकी चर्चा नहीं आती। शाल, वेणु, धव, अश्वत्थ, तिंदुक, इंगुद, पलाश, अर्जुन, अरिष्ट, तिनिश, लोध, पद्मक, प्रियाल, ताल, पुन्नाग, पृक्ष आदि नाम और उनकी पहचान सब जगह से खो गई। वनस्पतिशास्त्र की किताबो में भी अगर ये वृक्ष हैं तो अपने वैज्ञानिक नामों से ही जाने जा सकते हैं। इनके देशज अथवा संस्कृत नाम तो समाप्त हो गए। स्वयंजात वनों के न रहने पर वनस्पतियों का वह भंडार समाप्त हो गया।

आज इसकी पहले से कहीं अधिक ज़रूरत है कि हम अपनी ज़मीन को पहचानें, उस पर वनस्पतियों की रक्षा करें और नदियों से स्वच्छ जल प्रवाहित होने दें।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

मौखिक

1. भारत की सात प्रमुख नदियों के नाम जानने से भारत की एकता का आभास कैसे होता है?
2. भारतीय भू-भौगोलिक स्थिति को ठीक-ठीक किस प्रकार समझा जा सकता है?
3. भारत के कुछ प्रसिद्ध स्वयंजात वनों के उदाहरण दीजिए।
4. जनसंख्या वृद्धि के प्रकृति पर क्या प्रभाव हो रहे हैं?

लिखित

1. नदियाँ हमारे जीवन में किन रूपों मे महत्त्वपूर्ण रही हैं?
2. वन-पर्वत और नदियो के नज़दीकी रिश्ते को स्पष्ट कीजिए।
3. आदमी अपने-आप को अकेला कैसे बना रहा है?
4. लेखक ऐसा क्यों कहता है कि भारत की नदियाँ अब मोक्षदायिनी नहीं रह गई हैं?
5. नदियों, पर्वतो और वनों से भरपूर देश की स्थिति में आज क्या परिवर्तन आ गया है?
6. टिप्पणी कीजिए.
   — जब गंगा गंगा न रही, तब काशी की क्या स्थिति होगी।
   — वनों की महत्ता और आवश्यकता को अस्वीकार करके न हम आर्थिक उन्नति के सोपान गढ़ सकते है और न स्वास्थ्य और सुख की कल्पना कर सकते हैं।
   — इस देश की नदियाँ ही इसकी श्री रही हैं।
7. यदि वर्तमान स्थिति मे सुधार के उपाय नही किए गए तो भविष्य मे क्या परिणाम होंगे?

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दो का संधि-विच्छेद कीजिए :
   समुद्रांत, उच्छिष्ट, अत्यधिक, जलाशय, सन्निधि।
2. पाठ मे 'इक' प्रत्यय से युक्त कई शब्द आए हैं। मूल शब्द के साथ 'इक' प्रत्यय लगने से शब्द के प्रारंभिक स्वर मे परिवर्तन आ जाता है ; जैसे:
   आर्थिक – अर्थ+इक (अ का आ मे परिवर्तन)
   वैज्ञानिक – विज्ञान+इक (इ का ऐ मे परिवर्तन)
   पौराणिक – पुराण+इक (उ का औ मे परिवर्तन)
   उपर्युक्त तीन प्रकार के शब्दों के तीन-तीन उदाहरण लिखिए।

3. निम्नलिखित शब्दों मे समास बताइए और उनका विग्रह कीजिए: रिश्ते-नाते, जल-प्रदूषण, जलागम-क्षेत्र, आदमी-आदमी।
4 निम्नलिखित वाक्यो के शुद्ध रूप लिखिएः
   (क) यमुना गंगा का पहला तथा बड़ा पश्चिमी सहायक नदी है।
   (ख) सारा भारत आज भी प्रमुख नदियो के समूह में बॅटी हुई है।
   (ग) हम हमारी ज़मीन को पहचानें।
   (घ) आवश्यकता यह बात की है कि प्रदेशों में विभागों की अलग-अलग अमलदारी समाप्त करी जाए।
   (ङ) उसने आज के संदर्भ मे गंगा के महत्त्व को देखना है।

योग्यता-विस्तार

1. 'आज के मानव के लिए अपनी जमीन से जुड़ने, जीवन मे नदियों के महत्त्व को पहचानने और पर्यावरण की रक्षा करने की आवश्यकता पहले से कही अधिक है।' कक्षा में विचार-विमर्श कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

समृद्ध	–	समुन्नत, साधन-संपन्न
आवाहन	–	बुलाना, पूजा मे किसी देवता को मत्र द्वारा आमंत्रित करना
गंगे यमुने चैव गोदावरी सरस्वती नर्मदा-सिंधु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु	–	गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी नदियों के जल से समीपता (तादात्म्य) प्राप्त करें।
विच्छिन्न	–	अलग होना
मोक्षदायिनी	–	मुक्ति देने वाली
गंगोत्री	–	हिमालय मे वह स्थान जहॉ से गगा निकलती है
आपूरित	–	युक्त, भरी-पूरी
उच्छिष्ट	–	जूठन, कूडा-कर्कट
सिकतामेरु	–	बालू के पहाड़
पुण्यतोया	–	पवित्र जल वाली नदी
समुद्रांत	–	समुद्र के अंत तक
वनाच्छादित	–	वनों से घिरी
यमुनोत्री	–	हिमालय में वह स्थान जहॉ से यमुना निकलती है

उद्गम	–	निकास
अनुप्राणित	–	प्रेरित, प्राण संचार
प्रचुर	–	पर्याप्त
स्थापत्यकला	–	भवन-निर्माण की कला, वास्तुकला
संवर्धन	–	बढ़ाना
परिप्रेक्ष्य	–	सदर्भ
आवृत्त	–	ढका हुआ
स्वयंजात वन	–	प्राकृतिक वन
जलागम क्षेत्र अधिकरण	–	जलसंचय क्षेत्र से संबंधित विभाग
समन्वित	–	संयुक्त, मिश्रित
समग्रता	–	पूर्णता
आनुवंशिक	–	वंश परंपरा से प्राप्त
पारिस्थितिकीय	–	परिस्थिति और पर्यावरण से संबंधित
उपहासास्पद	–	मजाक उड़ाने योग्य

शंकर पुणतांबेकर



मराठी भाषी शंकर पुणतांबेकर का जन्म सन 1925 में मध्य प्रदेश के गुना जिले के ग्राम कुंभराज में हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा विदिशा, ग्वालियर और आगरा में हुई। ये इतिहास मे एम ए. के साथ-साथ हिंदी में भी एम.ए. तथा पीएच.डी. हैं। सन 1985 में सेवा निवृत्ति के बाद जसगॉव मे स्थायीरूप से रह रहे हैं।

पुणताबेकर के लेखन पर प्रेमचंद की छाप है। सन 1972 से इन्होंने व्यंग्य-लेखन आरंभ किया। वैचारिक गंभीरता इनके व्यंग्य-लेखन की विशेषता है। इनकी व्यंग्य रचनाओं में कथ्य की स्पष्टता, विषयानुरूप शब्द-चयन और सांकेतिकता के दर्शन होते हैं। कम-से-कम शब्दों मे अधिक-से-अधिक भाव-व्यंजकता का गुण इनके व्यंग्य-लेखन को विचारोत्तेजक बना देता है। व्यंग्य लेखक होने के साथ-साथ वे व्यंग्य आलोचक भी हैं। इनकी आलोचना मे निस्सगता और स्पष्टवादिता झलकती है। हिंदी की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओ मे इनकी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

इन्होंने **कहानी, निबंध, उपन्यास, नाटक, लघुकथा** आदि विधाओं में व्यग्य लिखा है। व्यग्य की प्रमुख पुस्तकों में **बाअदब बेमुलाहजा, शतरंज के खिलाड़ी, दुर्घटना से दुर्घटना तक, मेरी फॉसी, गिद्‌ध मॅडरा रहा है, तीन व्यंग्यात्मक, एक मंत्री स्वर्गलोक में** तथा **व्यंग्य अमरकोश** के नाम से लिए जा सकते हैं।

व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में प्रतिष्ठित पुरस्कारों से भी ये सम्मानित हो चुके हैं। इन पुरस्कारों में प्रमुख है : मुंवई का 'चकल्लस पुरस्कार' तथा हिंदी भवन, दिल्ली का 'व्यंग्य श्री' पुरस्कार। इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई और केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली से भी आप पुरस्कृत हो चुके हैं।

प्रस्तुत पाठ में लेखक ने रूस के नेता गोर्बाचेव, धर्मगुरु शंकराचार्य, अफ्रीकी नेता मंडेला और अमरीकी साहित्यकार मिलर के माध्यम से वर्तमान सत्ता, धर्म, राजनीति और साहित्य

में आई विकृतियों और प्रवंचनाओं पर करारी चोट की है। उपर्युक्त सभी महापुरुष समाज मे आए इन दोषों को लेकर व्यग्र एवं चिंतित हैं और वे चित्रकार की कला का सहारा लेकर वस्तुस्थिति के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करना चाहते हैं। इसलिए वे चित्रकार से अनुरोध करते हैं कि वे उनके लिए ऐसा चित्र बना दे जो समाज में आई इन विकृतियों का निवारण कर सके। चित्रकार उनके वांछित चित्रों को बना देता है। साथ ही वह उनके नैतिक विचारों से इतना अभिभूत हो जाता है कि भेड़िए के लिए भेड़ का चित्र बनाने से इनकार कर देता है किंतु पत्नी द्वारा आर्थिक विवशता की याद दिलाने पर वह दरवाज़े की ओर दौड़ पड़ता है।

चित्र

वह चित्र बना रहा था। सामने स्टैंड पर फलक, हाथ में कूँची, नीचे रंग फैले हुए। वह चित्र बना तो रहा था, पर क्या चित्र बना रहा था उसे नही मालूम । ऑखों के सामने धुँधलका। धुँधलके मे से वह चित्र खोजने की कोशिश करता।

दरवाज़े पर दस्तक। वह उठकर दरवाज़ा खोलता है।

दरवाज़ा खोलने पर सामने क्या देखता है कि रूस के मिखाइल गोर्बाचेव खड़े हुए हैं।

"आइए, आइए !" वह उनका स्वागत करता है और उन्हें अंदर लाता है। फलक के पास एक कुरसी थी, उसी पर वह गोर्बाचेव को बैठाता है।

"माफ़ करना, मैंने तुम्हें डिस्टर्ब किया। तुम काम में हो।" गोर्बाचेव बोले।

"नहीं, नहीं, आपने डिस्टर्ब नहीं किया।" वह बोला, "मैं काम में ज़रूर था। मेरे हाथ में कूँची तो थी लेकिन ऑखों में दृष्टि नहीं थी। पता नहीं कूँची से क्या उतरता।"

"मेरा एक काम करोगे? मुझे एक चित्र बना दो। कबूतर का चित्र।"

"कबूतर का चित्र !" वह बोला।

"हाँ," गोर्बाचेव ने कहा। "अब तक हमने बड़े गलत चित्र बनाए कबूतर के। हमने से मतलब है रूस ने, अमेरिका ने। चित्र तो हम लोगों ने कबूतर का बनाया लेकिन उसके अंदर रखे शस्त्र...अणुशस्त्र। ऊपर से कबूतर और अंदर से गिद्ध। ऐसा चित्र क्यों बनाया? इसलिए कि हम स्वयं ऊपर से कबूतर और अंदर से गिद्ध थे।"

"आप क्या लेंगे? चाय या कॉफ़ी? वोडका तो मेरे यहाँ है नहीं।"

गोर्बाचेव हँसे। बोले, "जो भी तुम पिलाओ। सही कबूतर के चित्र के साथ तो ज़हर भी पिलाओगे तो मैं पी लूँगा।"

उसने गोर्बाचेव के लिए कबूतर का चित्र बना दिया।

गोर्बाचेव बड़ी खुशी-खुशी उसके यहाँ से विदा हुए।

वह चित्र बना रहा था।

वह चित्र बना तो रहा था, पर क्या चित्र बना रहा था उसे नहीं मालूम ! आँखों के सामने धुँधलका। धुँधलके में से वह चित्र खोजने की कोशिश करता।

दरवाज़े पर दस्तक।

दरवाज़ा खोलने पर सामने क्या देखता है तो धर्म की मूर्ति शंकराचार्य। वह स्वागत कर उन्हें अंदर लाता है और फलक के पास की कुरसी पर बैठाता है।

"क्षमा करना, मैं तुम्हारे पास एक काम से आया था। मुझे एक चित्र बना दो। हंस का चित्र।"

"हंस का चित्र !" वह बोला।

"हॉ," शंकराचार्य ने कहा, "शुभ्र वर्ण का हंस, रक्त वर्ण का नही। मोती चुगने वाला...राजनीति, अर्थनीति, धर्मनीति में से केवल नीति चुगने वाला हंस। पानी-का-पानी और दूध-का-दूध कर देने वाला हंस।"

"लेकिन आप स्वयं ऐसा हंस प्रस्तुत करते रहे हैं। कबीर ने प्रस्तुत किया, नानक ने प्रस्तुत किया, स्वामी विवेकानंद ने प्रस्तुत किया।"

"हॉ, किया। लेकिन लोकतंत्र में इसे अब लोक के हाथो ही प्रस्तुत होने दो। लोगों को हमारी कूँचियों में सांप्रदायिकता के रंग नज़र आते हैं, हमारे हंसो में कौआ नजर आता है।"

"आप क्या लेंगे चाय या कॉफी? दूध तो मेरे यहॉ है नहीं।" वह बोला।

"मैं जानता हूँ, नही होगा। दूध शुभ्र होता है और विडंबना यह कि शुभ्र ही इससे वंचित रह जाता है। तुम मुझे सिर्फ़ पानी दो।"

"लेकिन मेरा वर्ण तो.."

"कला का, श्रम का, चरित्र का, न्याय का कोई वर्ण नही होता। बल्कि इनका उच्च वर्ण होता है। हमें जो उच्च वर्ण अभिप्रेत है वह इन्ही का वर्ण है।"

उसने शंकराचार्य के लिए हंस का चित्र बना दिया।

शंकराचार्य बड़ी खुशी-खुशी उसके यहाँ से विदा हुए।

वह चित्र बना रहा था।

वह चित्र बना तो रहा था, पर क्या चित्र बना रहा था उसे नहीं मालूम ! आँखों के सामने धुँधलका। धुँधलके में से वह चित्र खोजने की कोशिश करता। दरवाज़े पर दस्तक।

उसने उठकर दरवाज़ा खोला तो देखा अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस के नेता नेल्सन मंडेला खड़े हैं।

स्वागत कर वह उन्हें अंदर लाया और फलक के पास की कुरसी पर बैठाया।

"मैं ज़रा जल्दी में हूँ भाई ! तुम तो जानते हो वर्षों बाद जेल से छूटा हूँ। बहुत काम पड़े हैं। मैं चाहता हूँ तुम मेरे लिए एक चित्र बना दो। एक कोकिल का चित्र।" मंडेला बोले।

"कोकिल का चित्र !" उसके मुँह से निकला।

"हाँ," मंडेला ने कहा, "कोकिल का चित्र...काली कोकिल का चित्र, जिसको अब तक सफ़ेद चमड़ी के हंस नामी बगुलों ने कौआ समझ रखा था।

"हे कलाकार, तुम तो जानते हो, राजनीति में केवल दो ही वर्ण होते हैं : एक सफ़ेद, एक काला। सफ़ेद अपने काले पर पोतने के लिए, काला औरों के सफ़ेद पर पोतने के लिए। कला-नीति में ऐसा नहीं होता। वहाँ तो वर्ण नहीं रंग होते हैं : विविध रंग। कलानीति में तो काला भी उतना ही सुंदर है जितना कोई और रंग। काला राजनीति में कौआ है तो कलानीति में कोकिल।"

"आप महान हैं मंडेला साहब, आप महान हैं। राजनीति में रहते भी आपको कला की परख है।"

"मेरे कलाकार, अब क्या बताऊँ मैं तुम्हें ! कोकिल के चित्र बनते रहे, पर अंदर उसके तोता रहता। अंदर तोता, सो पिंजरे में बंद आराम की ज़िंदगी जीता और पढ़ाए हुए को ही गाता।"

"आप क्या लेंगे चाय या कॉफ़ी?"

"दोनों ही कुछ अंतर पे लूँ तो?" मंडेला हँसते हुए बोले, "जेल इन्हीं पर तो काटी है भाई ! चाय तो अभाव और गरीबी का एकमात्र सहारा है।"

उसने मंडेला के लिए कोकिल का चित्र बना दिया।

मंडेला बड़ी खुशी-खुशी उसके यहाँ से विदा हुए।

वह चित्र बना रहा था।

वह चित्र बना तो रहा था, पर आँखों के सामने धुंधलका होने से कोई स्पष्ट चित्र उसकी नज़रो में नहीं था।

तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई।

उसने उठकर दरवाज़ा खोला तो पाया– महान अमेरिकी लेखक आर्थर मिलर खड़े है।

"आइए, आइए !" उसने उनका स्वागत किया और वहीं फलक के पास की कुरसी पर बैठाया।

"तुमने मुझे पहचाना इसके लिए मैं तुम्हारा शुक्रगुज़ार हूँ। लोग खिलाड़ियों और अभिनेताओ को ही पहचानते हैं।"

"मैं शुक्रगुज़ार हूँ कि आप मेरे यहाँ आए। शब्दों का एक महान चितेरा मुझ जैसे सामान्य रंगकार के यहाँ !"

"नही भाई नहीं, ऐसा न कहो। सच पूछो तो मैं तुम्हारे यहाँ मतलब से आया हूँ। तुम एक चित्र बना दो मेरे लिए। मयूर का चित्र !"

"मयूर का चित्र !" उसके मुँह से निकला।

"तुम्हें आश्चर्य हो रहा है न !" मिलर बोले, "सोचते होगे मुझ जैसे को तो बंदर का चित्र बनवाना चाहिए। हम लोग कहते तो हैं कि बंदर से आदमी बने, लेकिन आदमी बनकर अब हम प्रगति के साथ देवता बनने के स्थान पर पुनः बंदर ही बन रहे हैं, संपन्न बंदर, शक्तिशाली बदर। शस्त्रों की रेस में अधिक संपन्न, दुनिया को खत्म करने की जिसमे अधिक ताकत वह अधिक प्रगत।"

"मै जानता हूँ, आपकी कलम ऐसे बंदरों के खिलाफ़ पूरी ताकत के साथ जूझ रही है।" वह बोला और सवाल किया, "आप मयूर का ही चित्र क्यों चाहते हैं?"

"इसलिए कि मैं साहित्य को मयूर मानता हूँ। अपने रंग-बिरंगे पंख फैलाकर मयूर कितना सुंदर नृत्य प्रस्तुत करता है ! ..... और जानते हो मयूर नृत्य ही नहीं करता, वह सर्प का सफ़ाया भी करता है।"

"एक बात कहूँ , आप बुरा तो नहीं मानेंगे?" वह बोला, " आज का साहित्य यथार्थ के नाम...सर्प का सफ़ाया करने के नाम केवल डंडा नचाता है, साहित्य नहीं।"

"आप ठीक कहते हैं," मिलर बोले, "डंडा...कोई वाद, फिर वह जनता से कितना ही जुड़ा हो साहित्य नहीं केवल डॉक्टरी एक्स-रे है।"

"आप क्या लेंगे चाय या कॉफ़ी?"

"कुछ भी। बस गरम हो, आज के सही साहित्य-जैसा।"

उसने मिलर के लिए मयूर का चित्र बना दिया।

आर्थर मिलर बड़ी खुशी-खुशी उसके यहाँ से विदा हुए।

वह चित्र बना रहा था। वह चित्र बना तो रहा था पर ऑखों के सामने धुँधलका होने से कोई स्पष्ट चित्र उसकी नज़रो मे नहीं था। पेट में चूहे बुरी तरह से दौड़ रहे थे। पत्नी को दो बार भोजन के लिए आवाज़ दे चुका था।

जब तीसरी बार आवाज़ दी तो पत्नी अंदर से ही बोली, "कैसे लाऊँ भोजन ! पकाने को घर में कुछ नहीं है। कैसे हो सकता है जब तुम कबूतर, कोकिल, हंस, मयूर मे डूबे रहोगे।"

तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई।

दरवाज़ा खोलने पर उसने देखा भेड़िया है।

"देखो, मुझे एक चित्र बना दो तुम। भेड़ का चित्र।"

"नहीं बनाऊँगा," वह बोला, "भेड़ को छीलने वाले, भेड़ को खा जाने वाले तुम ! मैं जानता हूँ भेड़ का चित्र तुम्हें क्यों चाहिए। भेड़ से प्यार के दिखावे के लिए।"

"मैं तुम्हें इतना दूँगा, इतना जो कोई नही दे सकता," भेड़िया बोला।

"नही, मैं बिकाऊ नही हूँ।"

इतना कह उसने दरवाज़ा बंद कर दिया और अपनी जगह पर आया।

तभी पत्नी बोली, "यह तुमने क्या किया ! रोटी दरवाज़े पर आई थी और तुमने उसे ठुकरा दिया।"

उधर पत्नी बोली और इधर उसके पेट की भूख भी ज़ोर से चीखी।

वह उठा और दरवाज़े की ओर भागा।

प्रश्न-अभ्यास

व॰। और विचार

मौखिक

1. गोर्बाचेव ने चित्रकार को कबूतर का चित्र बनाने के लिए क्यों कहा?
2. "हमारे हंसों में कौआ नज़र आता है", शंकराचार्य ने ऐसा क्यो कहा?
3. मंडेला ने चित्रकार से कोकिल का चित्र बनाने को क्यो कहा?
4. मिलर चित्रकार के प्रति कृतज्ञता क्यों व्यक्त करता है?

5. चित्रकार ने भेड का चित्र बनाने से क्यों इनकार कर दिया?
6. चित्रकार उठकर दरवाज़े की ओर क्यों भागा?

लिखित

1. 'सही कबूतर के चित्र के साथ तो ज़हर भी पिलाओगे तो मैं पी लूँगा।' सही कबूतर से गोर्बाचेव का क्या तात्पर्य है?
2. शंकराचार्य किस प्रकार का हंस चाहते थे? क्यो?
3. "दूध शुभ्र होता है और विडंबना यह है कि शुभ्र ही इससे वचित रह जाता है।" शकराचार्य के इस कथन मे निहित व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।
4. कोकिल के भीतर तोते का रहना वर्तमान समाज की किस मानसिकता की ओर संकेत करता है?
5. आर्थर मिलर यह क्यो कहते हैं कि प्रगति करते-करते हम पुनः बदर बन रहे हैं?
6 निम्नलिखित गद्यांश को पढिए और पूछे गए प्रश्नो के उत्तर दीजिए :

इसलिए कि मै साहित्य को मयूर मानता हूँ। अपने रंग-बिरंगे पंख फैलाकर मयूर कितना सुंदर नृत्य प्रस्तुत करता है। और जानते हो मयूर नृत्य ही नहीं करता, वह सर्प का सफ़ाया भी करता है।

एक बात कहूँ, आप बुरा तो नही मानेंगे? वह बोला, आज का साहित्य यथार्थ के नाम.. . .सर्प का सफ़ाया करने के नाम केवल डंडा नचाता है, साहित्य नही।

आप ठीक कहते हैं। मिलर बोले, डंडा..कोई वाद, फिर वह जनता से कितना ही जड़ा हो साहित्य नहीं केवल डॉक्टरी एक्स-रे है।

प्रश्न

(क) आर्थर मिलर साहित्य को मयूर क्यो मानते हैं?
(ख) सर्प किसका प्रतीक है?
(ग) "वह सर्प का सफ़ाया भी करता है।" मिलर के इस कथन पर चित्रकार ने क्या प्रतिक्रिया की?
(घ) आर्थर मिलर ने वादों के घेरे में बँधे साहित्य को डॉक्टरी एक्स-रे क्यों कहा है?

7. आशय स्पष्ट कीजिए :
   — राजनीति, अर्थनीति, धर्मनीति में केवल नीति चुनने वाला हंस।
   — कला का, श्रम का, चरित्र का, न्याय का कोई वर्ण नहीं होता।
   — काला राजनीति में कौआ है तो कलानीति मे कोकिल।
8. लेखक ने प्रत्येक प्रसंग के बाद निम्नलिखित कथन को बार-बार क्यों दोहराया है : वह चित्र बना तो रहा था पर ऑखों के सामने धुँधलका होने से कोई स्पष्ट चित्र उसकी नज़रो मे नहीं था।

9. लेखक ने गोर्बाचेव, शंकराचार्य, मंडेला और मिलर के माध्यम से समाज की किस स्थिति पर व्यंग्य किया है?

भाषा-अध्ययन

1. पाठ में अनेक ऐसे वाक्य हैं जिनमे व्याकरणिक रूप से पदक्रम मे हेर-फेर किया गया है। वास्तव में इन वाक्यों में शैलीगत भेद हैं। प्रत्येक लेखक की अपनी शैली होती है। कभी-कभी लेखक किसी अंश पर बल देने के लिए उसे वाक्य के प्रारंभ में प्रयुक्त करता है, जिससे भाव अधिक स्पष्ट हो सके ; जैसे– दूध तो मेरे यहाँ है नहीं।
   पाठ से इस प्रकार के पाँच वाक्य ढूँढ़कर लिखिए।
2. निम्नलिखित वाक्यों में से आज्ञार्थक, विधानवाचक, निषेधात्मक, प्रश्नवाचक बताइए:
   (क) आप क्या लेंगे चाय या काफ़ी?
   (ख) उसने गोर्बाचेव के लिए कबूतर का चित्र बना दिया।
   (ग) मुझे एक चित्र बना दो।
   (घ) नहीं, मै बिकाऊ नही हूँ।
3. निम्नलिखित वाक्यो का रूपातरण सरल वाक्यो में कीजिए:
   (क) वह उठा और दरवाजे की ओर भागा।
   (ख) वह उन्हें अंदर लाया और फलक के पास की कुरसी पर बैठाया।
   (ग) कला नीति में तो काला भी उतना ही सुंदर है जितना कोई और रंग।
4. निम्नलिखित अंश में उपयुक्त विराम चिह्न लगाइए–
   हे कलाकार तुम तो जानते हो राजनीति मे केवल दो ही वर्ण होते है एक सफ़ेद एक काला सफ़ेद अपने काले पर पोतने के लिए काला औरों के सफ़ेद पर पोतने के लिए।

योग्यता-विस्तार

1. जीवन मे देखी-सुनी और अनुभूत घटनाओं के आधार पर चर्चा कीजिए कि आज के व्यक्ति का भीतर और बाहर अलग-अलग है।
2. कल्पना के आधार पर बताइए कि चित्रकार के दरवाज़े की ओर भागने के बाद कहानी में क्या मोड़ आया होगा।
3. पाठ में आए महापुरुषों के बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

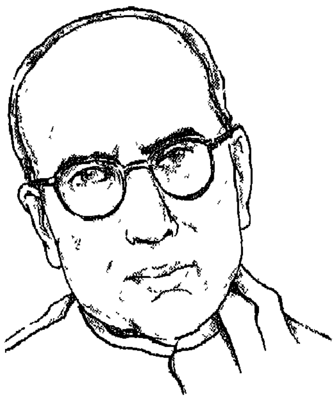
फलक – चित्र बनाने के लिए लकड़ी तख्ता, दफ़्ती का बोर्ड
दस्तक – दरवाज़ा खटखटाने की क्रिया, हाथ का हलका आघात या धक्का
वोडका – एक रूसी मदिरा

सांप्रदायिकता	–	संकीर्णता, अपने संप्रदाय को ही सर्वश्रेष्ठ मानना
विडंबना	–	उपहास्य, विरोधाभास
अभिप्रेत	–	अपेक्षित
चितेरा	–	चित्रकार
धुँधलका	–	अस्पष्टता, अँधेरा
परख	–	पहचान
गोर्बाचेव	–	सोवियत संघ के अंतिम राष्ट्रपति
आर्थर मिलर	–	अमरीकी उपन्यासकार
नेल्सन मंडेला	–	दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत नेता और पहले अश्वेत राष्ट्राध्यक्ष
शंकराचार्य	–	अद्वैत दर्शन के प्रतिपादक

मुहावरे

दूध का दूध और पानी का पानी	–	सही और गलत को अलग करना, शुद्ध और अशुद्ध की पहचान करना
पेट में चूहे दौड़ना	–	भूख लगना।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'



कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का जन्म सन 1906 मे सहारनपुर के देवबंद नगर मे हुआ। प्रारंभिक जीवन मे ही राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यो में भाग लेने के कारण उन्हे अनेक बार कारावास की यातना सहनी पड़ी।

पत्रकारिता-क्षेत्र में 'प्रभाकर' जी का कार्य सराहनीय रहा है। 'ज्ञानोदय' पत्रिका का कुछ समय तक संपादन करने के अलावा सहारनपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'नया जीवन' तथा 'विकास' का उन्होंने लबे अर्से तक संपादन किया। कन्हैयालाल मिश्र ने रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध, रिपोर्ताज़ लिखे हैं। उनकी शैली सजीव, प्रवाहपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी है। छोटी-से-छोटी एवं बड़ी-से-बड़ी बात को पूरी सहजता से कहने में वे सिद्धहस्त हैं। उनकी समस्त रचनाओं में नवीनता एवं ताज़गी रहती है, जो पाठको को बरबस अपनी ओर खीच लेती है। भाषा-शैली मे आत्मीयता और सहजता के कारण उनका गद्य लोकप्रिय है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का निधन सन 1995 में हुआ।

प्रभाकर जी की प्रमुख रचनाएँ है – **नई पीढ़ी नए विचार, ज़िंदगी मुसकराई, माटी हो गई सोना, आकाश के तारे धरती के फूल, दीप जले शंख बजे, बाजे पायलिया के घुँघरू, क्षण बोले कण मुसकाए, महके आँगन चहके द्वार, जिएँ तो ऐसे जिएँ** आदि।

लेखक ने प्रस्तुत निबंध मे एक हरे-भरे पेड और एक ठूँठ के माध्यम से जीवन-व्यवहार के गूढ सत्य को अत्यंत रोचक और सरल ढग से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। परिस्थितिवश हिलता और झुकता हरा-भरा पेड़ समन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रतीक है, तो ठूँठ का न हिलना और न झुकना जीवन की जड़ता का। जीवन का वास्तविक सत्य यह है कि व्यक्ति समय पर अड़ भी सके और समय पर झुक भी सके। हमारे विचार लचीले हों पर सिद्धांत के प्रश्न पर हम अडिग रहें, टूट भले ही जाएँ पर हिलें नहीं।

एक था पेड़ और एक था ठूँठ !

जिस मकान में मैं ठहरा, उसकी खिड़की के सामने ही खड़ा था एक पूरा पनपा पहाड़ी पेड़। पलंग पर लेटे-लेटे वह यो दीखता कि जैसे कुशल-समाचार पूछने को आया कोई मेरा ही मित्र हो।

एक दिन उसे देखते-देखते इस बात पर मेरा ध्यान गया कि यह इतना बड़ा पेड़ हवा का तेज़ झोका आते ही पूरा-का-पूरा इस तरह हिल जाता है जैसे बीन की तान पर कोई साँप झूम रहा हो और इसका ऊपर का हिस्सा, हवा जब और भी तेज़ हो जाती है, तो काफ़ी झुक जाता है, पर हवा के हलका पड़ते ही वह फिर सीधा हो जाता है।

हवा मौज मे थी, अपने झोंकों में झूम रही थी, इसलिए बराबर यही क्रिया होती रही और मैं उसे देखता रहा। देखता क्या रहा, उसकी झुक-झूम में रस लेता रहा। पड़े-पड़े वह पेड़ पूरा न दीखता था, इसलिए मैं पलंग से खिड़की पर आ बैठा। अब मुझे वह पेड जड़ से फुंगल तक दिखाई देने लगा और मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि हवा कितनी भी तेज़ हो, पेड़ की जड़ स्थिर रहती है – हिलती नहीं है।

यही बैठे, मेरा ध्यान एक दूसरे पेड़ पर गया, जो इस पेड़ से काफ़ी निचाई मे था। पेड़ क्या था, पेड़ का ठूँठ था – ठूँठ; सूखा वृक्ष और सूखा वृक्ष माने निर्जीव मुरदा वृक्ष। सोचा, यह वृक्ष का कंकाल है, जैसा एक दिन सभी को होना है ! अब मैं कभी इस हरे-भरे पेड की ओर देखता, कभी उस सूखे ठूँठ की तरफ़। यों ही देखते-भालते मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि हवा धीमे चले या वेग से, यह ठूँठ न हिलता है, न झुकता है। न हिलना, न झुकना; मन में यह दो शब्द आए और मैंने आप ही आप इन्हें अपने में दोहराया – न हिलना, न झुकना।

दूर अंतर मे कुछ स्पर्श हुआ, पर वह स्पर्श सूक्ष्म था, यों ही संकेत-सा। शब्द चक्कर काटते रहे – न हिलना, न झुकना और तब आया यह वाक्य – न हिलना, न झुकना

जीवन की स्थिरता का, दृढ़ता का चिह्न है और वह वीर पुरुष है, जो न हिलता है, न झुकता है।

तभी मैंने फिर देखा उस ठूँठ की ओर। वह न हिल रहा था, न झुक रहा था ! मन मे अचानक प्रश्न आया–न हिलना, न झुकना जीवन की स्थिरता का चिह्न है, पर इस ठूँठ में जीवन कहाँ है? यह तो मुरदा पेड़ है !

अब मेरे सामने एक विचित्र दृश्य था कि जो जीवित था, वह हिल रहा था, झुक रहा था और जो मृतक था वह न हिल रहा था, न झुक रहा था। तो न हिलना, न झुकना जीवन की स्थिरता का चिह्न हुआ या मृत्यु की जड़ता का?

अजीब उलझन थी, पर समाधान क्या था? मैं दोनों को देख रहा था, देखता रहा और तब मेरे मन में आया कि जो परिस्थितियों के अनुसार हिलता, झुकता नहीं, वह वीर नहीं, जड़ है; क्योंकि हिलना और झुकना ही जीवन का चिह्न है।

हिलना और झुकना अर्थात् परिस्थितियों से समझौता। जिस जीवन में समझौता नहीं, समन्वय नहीं, सामंजस्य नहीं, वह जीवन कहाँ है? वह तो जीवन की जड़ता है; जैसे यह ठूँठ और जैसे यह पहाड़ का शिखर।

मुझे ध्यान आया कि जीते-जागते जीवन में भी एक ऐसी मनोदशा आती है, जब मनुष्य हिलने और झुकने से इनकार कर देता है। अतीत में रावण और हिरण्यकशिपु इस दशा के प्रतीक थे तो इस युग में हिटलर और स्टालिन, जो केवल एक ही मत को सही मानते रहे और वह स्वयं उनका मत था। आज की भाषा में इसी का नाम है डिक्टेटरी-अधिनायकता।

विश्व की भाषा है – दे, ले।

विश्व की जीवन-प्रणाली है – कह,सुन।

विश्व की यात्रा का पथ है – मान, मना।

इन तीनों का समन्वय है – हिलना-झुकना और समझौता-समन्वय। जिसमें यह नहीं है, वह जड़ है; भले ही वह इस ठूँठ की तरह निर्जीव हो या रावण की तरह ज़िद्दी!

मेरी खिड़की के सामने खड़ा हिल रहा था बाँझ का विशाल पेड और दूर दीख रहा था वह ठूँठ। समय की बात, तभी पास के घर से निकला एक मनुष्य और वह अपनी छोटी कुल्हाड़ी से उस ठूँठ का एक छोटा टहना काटने लगा। सामने ही दीख रही थी सड़क, जिस पर अपनी कुदाल से काम कर रहे थे कुछ मज़दूर।

कुल्हाड़ी और कुदाल; कुदाल और कुल्हाड़ी – मैंने बार-बार इन शब्दों को दोहराया और तब आया मेरे मन में यह वाक्य – विश्व की भाषा है–दे, ले; विश्व की जीवन-प्रणाली है कह, सुन; विश्व की यात्रा का पथ है – मान, मना अर्थात् हिल भी और झुक भी, पर जो इन्हें भूलकर जड़ हो जाता है, वह ठूँठ हो, पर्वत का शिखर हो, अहंकारी मानव हो, विश्व उससे जिस भाषा में बात करता है उसी के प्रतिनिधि हैं ये कुल्हाड़ी-कुदाल।

साफ़-साफ़ यों कि जीवन में दो भी लो भी, कहो भी सुनो भी, मानो भी मनाओ भी और यह सब नहीं तो तैयार रहो कि तुम काट डाले जाओ, खोद डाले जाओ, पीस डाले जाओ !

मैं खिड़की से उठकर अपने पलंग पर आ पड़ा। बाँझ का पेड़ अब भी हिल रहा था, झुक रहा था, झूम रहा था, पर तभी मेरे मन में उठा एक प्रश्न – तो क्या जीवन की चरितार्थता बस यही है कि जीवन में हवा का झोका आया और हम हिल गए? जीवन में संघर्ष का झटका आया और हम झुक गए? साफ़-साफ़ यों कि यहाँ-वहाँ हिलते-झुकते रहना ही महत्त्वपूर्ण है और जीवन की स्थिरता-दृढ़ता जीवन के नकली सत्य ही हैं?

प्रश्न क्या है, कंबख्त बिजली का तेज़ शॉक है यह, जो यों धकियाता है कि एक बार तो जड से ऊपर तक सब पाया-सँजोया अस्त-व्यस्त हो उठे। सोचा – नहीं जी, यह हिलना और झुकना जीवन की कृतार्थता नहीं, अधिक-से-अधिक यह कह सकते हैं कि विवशता है। जीवन की वास्तविक कृतार्थता तो न हिलना, न झुकना ही है, यानी दृढ़ रहना ही है – 'मरियम सो मरियम, पै टरियम नहीं'।

मैं अपने पलंग पर पड़ा देखता रहा कि वह पेड़ झुक रहा है, झूम रहा है, हिल रहा है और दूर पर खड़ा ठूँठ न हिलता है न झुकता है। जीवन है वृक्ष मे, जो जीवन की कृतार्थता-दृढ़ता से हीन है और वह दृढ़ता है ठूँठ में, जो जीवन से हीन है; अजीब उलझन है यह !

तभी हवा का एक तेज़ झोंका आया और पेड़ हिल उठा। मेरी दृष्टि उसकी झूमती देह-यष्टि के साथ रपटी-रपटती उसकी जड़ तक चली गई और तब मैंने फिर देखा कि हवा का झोंका आता है तो टहनियाँ हिलती हैं, तना भी झूमता है, पर अपनी जगह जमी रहती है उसकी जड़। हवा का झोंका हलका हो या तेज़, वह न झुकती है, न झूमती है।

अब स्थिति यह कि कभी मैं देख रहा हूँ स्थिर जड़ को और कभी हिलते-झूमते ऊपरी भाग को। लग रहा है कि कोई बात मन में उठ रही है और वह उलझन को सुलझानेवाली है, पर वह बात क्या है?

बात मन की तह से ऊपर आ रही है – ऊपर आ गई है।

बात यह कि हमारा जीवन भी इस वृक्ष की तरह होना चाहिए कि उसका कुछ भाग हिलने-झुकनेवाला हो और कुछ भाग स्थिर रहनेवाला, यही जीवन की पूर्ण कृतार्थता है।

बात अपने में पूर्ण है, पर ज़रा स्पष्टता चाहती है और वह स्पष्टता यह है कि हम जीवन के विस्तृत व्यवहार में हिलते-झुकते रहें, समन्वयवादी रहें, पर सत्य के, सिद्धांत के प्रश्न पर हम स्थिर रहें, दृढ़ रहें और टूट भले ही जाएँ, पर हिलें नहीं, समझौता करें नहीं।

जीवन में देह है, जीवन में आत्मा है। देह है नाशशील और आत्मा है शाश्वत, तो आत्मा को हिलना-झुकना नहीं है और देह को निरंतर हिलना-झुकना ही है; नहीं तो हम हो जाएँगे रामलीला के रावण की तरह, जो बाँस की खपच्चियों पर खडा रहता है – न हिलता है, न झुकता है। हमारे विचार लचीले हों, परिस्थितियों के साथ वे समन्वय साधते चलें, पर हमारे आदर्श स्थिर हों। हमारे पैरों में जीवन के मोर्चे पर डटे रहने की भी शक्ति हो और स्वयं मुड़कर हमें उठने-बैठने-लेटने में मदद देने की भी।

संक्षेप में जीवन की कृतार्थता यह है कि वह दृढ़ हो, पर अड़ियल न हो।

दृढ़, जो औचित्य के लिए, सत्य के लिए टूट जाता है, पर हिलता और झुकता नहीं।

अड़ियल, जो औचित्य और अनौचित्य, समय-असमय के विचार किए बिना ही अड जाता है और टूट तो जाता है, पर हिलता-झुकता नहीं।

दो टूक बात यों कि जीवन वह है, जो समय पर अड़ भी सकता है और समय पर झुक भी; ठूँठ वह है, जो अड़ ही सकता है, झुक नहीं सकता।

एक है जीवंत दृढ़ता और दूसरा निर्जीव जड़ता।

हम दृढ़ हों, जड़ नहीं।

मैंने देखा, पहाडी पेड अब भी हिल रहा था, झुक रहा था और ठूँठ अनझुका, अनहिला, ज्यों-का-त्यों खड़ा।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

मौखिक

1. लेखक को अपनी खिड़की के सामने का पेड़ मित्र-सा क्यों प्रतीत होता है?
2. लेखक ने किस तथ्य के प्रतिपादन के लिए रावण, हिरण्यकशिपु और स्टालिन का एक साथ उल्लेख किया है?
3. कुल्हाडी और कुदाल किसका प्रतिनिधित्व करते हैं?
4. लेखक को कौन-सा दृश्य विचित्र लगा?

लिखित

1. ठूँठ को हिलते-झुकते न देखकर लेखक के मन मे पहले क्या विचार उमड़ा? बाद में उसकी धारणा मे क्या परिवर्तन आया?
2. पेड़ और ठूँठ को देखकर लेखक के मन में क्या द्वंद्व उभरा? अंततः उसने उस द्वंद्व का क्या समाधान निकाला?
3. एक है जीवंत दृढ़ता और दूसरा निर्जीव जड़ता – लेखक ने 'जीवंत दृढ़ता' और 'निर्जीव जड़ता' से किनकी ओर संकेत किया है और क्यों?
4. लेखक ने दृढ़ और अड़ियल में क्या अंतर किया है?
5. आशय स्पष्ट कीजिए:
   (क) विश्व की भाषा है– दे, ले।
   विश्व की जीवन-प्रणाली है – कह, सुन।
   विश्व की यात्रा का पथ है – मान, मना।
   इन तीनों का समन्वय है – हिलना-झुकना और समझौता-समन्वय। जिसमें यह नहीं है, वह जड़ है; भले ही वह इस ठूँठ की तरह निर्जीव हो या रावण की तरह ज़िद्दी।
   (ख) जीवन है वृक्ष में, जो जीवन की कृतार्थता-दृढ़ता से हीन है और वह दृढ़ता है ठूँठ में, जो जीवन से हीन है; अजीब उलझन है यह।
   (ग) जीवन में देह है, जीवन में आत्मा है। देह है नाशशील और आत्मा है शाश्वत, तो आत्मा को हिलना-झुकना नही है और देह को निरंतर हिलना झुकना ही है; नहीं तो हम हो जाएँगे रामलीला के रावण की तरह, जो बाँस की खपच्चियों पर खड़ा रहता है – न हिलता है, न झुकता है।

6. 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ' शीर्षक की सार्थकता पर टिप्पणी कीजिए। इस पाठ का कोई अन्य शीर्षक भी सुझाइए।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्द-रूपों में शब्द-युग्म और पुनरुक्त शब्द छाँटकर अलग-अलग लिखिए: झुक-झुक, हरे-भरे, देखते-भालते, बार-बार, जीते-जागते, साफ-साफ़, हिलते-झुकते, रपटती-रपटती, उठते-बैठते।
2. पाठ में दो शब्द आए हैं – अनझुका और अनहिला। इनमे 'अन' उपसर्ग है जिसका अर्थ है निषेध, विरोध और अभाव। यह उपसर्ग हिदी में व्यंजन से प्रारंभ होने वाले शब्दो के पूर्व प्रयुक्त होता है। एक अन्य उपसर्ग है 'अन्' जो स्वर से प्रारंभ होने वाले तत्सम शब्दों के पूर्व प्रयुक्त होता है ; जैसे – अनुचित (अन्+उचित) , अनधिकार (अन्+अधिकार)।
   'अन' और 'अन्' उपसर्गो से बनने वाले तीन-तीन शब्द लिखिए।
3. वाक्य में कर्ता, कर्म, पूरक, क्रियाविशेषण, क्रिया शब्द आदि सामान्यत जिस क्रम मे आते है उस क्रम को पदक्रम कहते हैं। कितु वाक्य के किसी अंश पर बल देने के लिए पदक्रम मे थोड़ा परिवर्तन कर देते है ; जैसे – तभी मैंने फिर देखा उस ठूँठ की ओर। इस वाक्य में 'ठूँठ की ओर' पर बल दिया गया है। व्याकरणिक दृष्टि से इस वाक्य का पदक्रम होता– तभी मैने फिर उस ठूँठ की ओर देखा।

   पाठ में आए निम्नलिखित वाक्यो के पदक्रम पर ध्यान दीजिए और व्याकरण सम्मत क्रम लिखिए और बताइए कि किस अंश पर बल दिया गया है:
   1. सामने ही दीख रही थी सड़क।
   2. पर अपनी जगह जमी रहती है उसकी जड।
   3. जिस मकान में मैं ठहरा, उसकी खिड़की के सामने ही खड़ा था एक पूरा पनपा पहाड़ी पेड़।

योग्यता-विस्तार

1. 'जीवन में परिस्थितियों से समझौता करना आवश्यक है।' कक्षा मे इस विषय पर वाद-विवाद का आयोजन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

ठूँठ	–	बिना डाल-पात के सूखा पेड़
फुंगल	–	फुनगी
समाधान	–	हल, उपाय
समन्वय	–	कार्य-कारण सबंध का निर्वाह

सामंजस्य	–	संगति, अनुकूलता
अधिनायक	–	तानाशाह
चरितार्थता	–	यथार्थ सिद्ध होना, घटित होना
कृतार्थ	–	सफल मनोरथ
देह-यष्टि	–	शारीरिक रचना
शाश्वत	–	कभी नष्ट न होने वाला
खपच्ची	–	बॉस की तीली, फट्टी
हिरण्यकशिपु	–	पौराणिक दानव जिनका पुत्र प्रह्लाद था
हिटलर	–	जर्मनी का तानाशाह जिसके कारण द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हुआ
स्टालिन	–	साम्यवादी क्रांति के बाद रूस का सर्वोच्च सत्ताधारी अधिनायक।

जैनेंद्र कुमार



जैनेंद्र का जन्म सन 1905 में अलीगढ़ जिले के कौड़ियागंज मे हुआ था। उन्होंने मैट्रिक तक की शिक्षा हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल में प्राप्त की। उसके बाद उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया किंतु गांधीजी के आह्वान पर वे अध्ययन छोड़कर असहयोग आंदोलन में शामिल हो गए। वे गांधीजी के जीवन-दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हुए, जिसकी झलक उनकी रचनाओं में भी पाई जाती है।

जैनेंद्र जी हिंदी साहित्य में अपने कथा-साहित्य के कारण प्रसिद्ध हैं। **एक रात, वातायन, दो चिड़ियाँ, नीलम देश की राजकन्या** आदि उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है। **सुनीता, कल्याणी, त्यागपत्र, सुखदा, परख, जयवर्धन** आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

जैनेंद्र जी को उनके **मुक्तिबोध** उपन्यास पर साहित्य अकादमी ने पुरस्कृत किया है। इनकी साहित्यिक सेवाओ के लिए उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने सन 1984 में उन्हें 'भारत-भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया।

जैनेंद्र जी का निधन सन 1989 में हुआ।

जैनेंद्र की भाषा तत्समप्रधान और प्रवाहपूर्ण है। उनकी शैली का प्रमुख गुण मनोवैज्ञानिक गहराई को उभारना है। कल्पना-प्रधानता, संवाद-प्रधानता और आम बोलचाल के शब्दों से कथ्य को उद्घाटित करने मे वे सिद्धहस्त हैं।

लेखक ने इस कथा में वन्य पशुओं और वनस्पतियों के माध्यम से यह दर्शाया है कि आज व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सत्ता के आगे कुछ सोच नहीं पाता है। वह भूल गया है कि उसका अपना अस्तित्व समग्र (कुल) के एक खड के रूप मे उसी प्रकार है जैसे वाटिका में एक पुष्प-पादप का।

कहानी के पेड़-पौधो और पशुओं को अपने-अपने अलग अस्तित्व का ही बोध है और सबके समग्र रूप वन से वे अनजान हैं। वे वन के अंश के रूप में अपने को नहीं देख पाते हैं। अपनी अज्ञानता के कारण वे अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग अलापते रहते हैं। समग्रता का बोध होने पर बड़ वन की सत्ता को स्वीकार कर लेता है और फिर सभी वन्य-प्राणी भी। इस कथा में यह संदेश निहित है कि मनुष्य को समिष्ट की सत्ता का बोध होने पर वह स्वय को उसका एक अंश समझने लगता है।

तत्सत्

एक गहन वन में दो शिकारी पहुँचे। वे पुराने शिकारी थे। शिकार की टोह में दूर-दूर घूम रहे थे, लेकिन ऐसा घना जंगल उन्हें नही मिला था। देखते ही जी में दहशत होती थी। वहाँ एक बड़े पेड़ की छाँह में उन्होंने वास किया और आपस में बातें करने लगे।

एक ने कहा, "आह, कैसा भयानक जंगल है।"

दूसरे ने कहा, "और कितना घना वन है !"

इसी तरह कुछ देर बात करके और विश्राम करके वे शिकारी आगे बढ़ गए।

उनके चले जाने पर पास के शीशम के पेड़ ने बड़ से कहा, "बड़ दादा, अभी तुम्हारी छाँह में ये कौन थे? वे गए?"

बड़ ने कहा, "हाँ गए। तुम उन्हें नहीं जानते हो?"

शीशम ने कहा, "नहीं, वे बड़े अजब मालूम होते थे। कौन थे, दादा?"

दादा ने कहा, "जब छोटा था, तब इन्हें देखा था। इन्हें आदमी कहते हैं। इनमें पत्ते नहीं होते, तना ही तना है। देखा, वे चलते कैसे हैं? अपने तने की दो शाखों पर ही चलते चले जाते हैं।"

शीशम – "ये लोग इतने ही ओछे रहते हैं, ऊँचे नहीं उठते, क्यों दादा?"

बड़ दादा ने कहा, "हमारी-तुम्हारी तरह इनमें जड़ें नहीं होतीं। बढ़ें तो काहे पर? इससे वे इधर-उधर चलते रहते हैं, ऊपर की ओर बढ़ना उन्हें नहीं आता। बिना जड़, न जाने वे जीते किस तरह हैं !"

इतने में बबूल, जिसमें हवा साफ़ छनकर निकल जाती थी, रुकती नहीं थी और जिसके तन पर काँटे थे, बोला, "दादा, ओ दादा, तुमने बहुत दिन देखे हैं। बताओ कि किसी वन को भी देखा है? ये आदमी किसी भयानक वन की बात कर रहे थे। तुमने उस भयावने वन को देखा है?"

शीशम ने कहा, "दादा, हॉ, सुना तो मैने भी था। वह वन क्या होता है?"

बड़ दादा ने कहा, "सच पूछो तो भाई, इतनी उमर हुई, उस भयावने वन को तो मैंने भी नहीं देखा। सभी जानवर मैंने देखे हैं। शेर, चीता, भालू, हाथी, भेड़िया। पर वन नाम के जानवर को मैंने अब तक नही देखा।"

एक ने कहा, "मालूम होता है, वह शेर-चीतों से भी डरावना होता है।"

दादा ने कहा, "डरावना जाने तुम किसे कहते हो? हमारी तो सबसे प्रीति है।"

बबूल ने कहा, "दादा, प्रीत की बात नहीं है। मैं तो अपने पास कॉटे रखता हूँ। पर वे आदमी वन को भयावना बताते थे। ज़रूर वह शेर-चीतों से बढ़कर होगा।"

दादा, "सो तो होता ही होगा। आदमी एक टूटी-सी टहनी से आग की लपट छोड़कर शेर-चीतों को मार देता है। उन्हें ऐसे करते अपने सामने हमने देखा है। पर वन की लाश हमने नहीं देखी। वह ज़रूर कोई बड़ा खौफ़नाक जीव होगा।"

इसी तरह उनमें बातें होने लगीं। वन को उनमें कोई नहीं जानता था। आस-पास के और पेड़ साल, सेंमर, सिरस उस बातचीत मे हिस्सा लेने लगे। वन को कोई मानना नहीं चाहता था। किसी को उसका कुछ पता नहीं था। पर अज्ञात भाव से उसका डर सबको था। इतने में पास ही जो बाँस खड़ा था और जो ज़रा हवा चलने पर खड़-खड़, सन्-सन् करने लगता था, उसने अपनी जगह से ही सीटी-सी आवाज़ देकर कहा; "मुझे बताओ, मुझे बताओ, क्या बात है। मैं पोला हूँ। मैं बहुत जानता हूँ।"

बड़ दादा ने गंभीर वाणी से कहा, "तुम तीखा बोलते हो। बात यह है कि बताओ तुमने वन देखा है? हम लोग सब उसको जानना चाहते हैं।"

बाँस ने रीती आवाज़ से कहा, "मालूम होता है, हवा मेरे भीतर के रिक्त में वन-वन-वन ही कहती हुई घूमती रहती है। पर ठहरती नहीं। हर घड़ी सुनता हूँ, वन है, वन है पर मैं उसे जानता नहीं हूँ। क्या वह किसी को दीखा है?"

बड़ दादा ने कहा, "बिना जाने फिर तुम इतना तेज़ क्यों बोलते हो?"

बॉस ने सन्-सन् की ध्वनि में कहा, "मेरे अंदर हवा इधर से उधर बहती रहती है, मैं खोखला जो हूँ। मैं बोलता नहीं, बजता हूँ। वही मुझमें बोलती है?"

बड़ ने कहा, "वंश बाबू, तुम घने नहीं हो, सीधे ही सीधे हो। कुछ भरे होते तो झुकना जानते। लंबाई में सब कुछ नहीं है।"

वंश बाबू ने तीव्रता से खड़-खड़, सन्-सन् किया कि ऐसा अपमान वह नहीं सहेंगे। देखो, वह कितने ऊँचे हैं !

बड़ दादा ने उधर से आँख हटाकर फिर और लोगों से कहा कि हम सबको घास से इस विषय में पूछना चाहिए। उसकी पहुँच सब कहीं है। वह कितनी व्याप्त है। और ऐसी बिछी रहती है कि किसी को उससे शिकायत नहीं होगी।

तब सबने घास से पूछा, "घास री घास, तू वन को जानती है?"

घास ने कहा, "नहीं तो दादा, मैं उन्हें नहीं जानती। लोगो की जड़ों को ही मैं जानती हूँ। उनके फल मुझसे ऊँचे रहते हैं। पदतल के स्पर्श से सबका परिचय मुझे मिलता है। जब मेरे सिर पर चोट ज़्यादा पड़ती है, समझती हूँ यह ताकत का प्रमाण है। धीमे कदम से मालूम होता है, यह कोई दुखियारा जा रहा है।

"दुख से मेरी बहुत बनती है, दादा ! मैं उसी को चाहती हुई यहाँ से वहाँ तक बिछी रहती हूँ। सभी कुछ मेरे ऊपर से निकलता है। पर वन को मैंने अलग करके कभी नहीं पहचाना।"

दादा ने कहा, "तुम कुछ नहीं बतला सकतीं?"

घास ने कहा, "मैं बेचारी क्या बतला सकती हूँ, दादा !"

तब बडी कठिनाई हुई। बुद्धिमती घास ने जवाब दे दिया। वाग्मी वंश बाबू भी कुछ न बता सके। और बड़ दादा स्वयं अत्यत जिज्ञासु थे। किसी के समझ मे नहीं आया कि वन नाम के भयानक जंतु को कहाँ से कैसे जाना जाए।

इतने में पशुराज सिंह वहाँ आए। पैने दाँत थे, बालो से गरदन शोभित थी, पूँछ उठी थी : धीमी गर्वीली गति से वह आए और किलक-किलककर बहते जाते हुए निकट एक चश्मे में से पानी पीने लगे।

बड़ दादा ने पुकार कर कहा, "ओ सिंह भाई, तुम बड़े पराक्रमी हो, जाने कहाँ-कहाँ छापा मारते हो। एक बात तो बताओ, भाई?"

शेर ने पानी पीकर गर्व से ऊपर को देखा। दहाड़कर कहा, "कहो, क्या कहते हो?"

बड़ दादा ने कहा, "हमने सुना है कि कोई वन होता है, जो यहाँ आस-पास है और बड़ा भयानक है। हम तो समझते थे कि तुम सबको जीत चुके हो। उस वन से कभी तुम्हारा मुकाबला हुआ है? बताओ वह कैसा होता है?"

शेर ने दहाड़कर कहा, "लाओ सामने वह वन, जो अभी मैं उसे फाड़-चीरकर न रख दूँ। मेरे सामने वह भला क्या हो सकता है !"

बड़ दादा ने कहा, "तो वन से कभी तुम्हारा सामना नहीं हुआ?"

शेर ने कहा, "सामना होता, तो क्या वह जीता बच सकता था। मैं अभी दहाड़ देता हूँ। हो अगर कोई वन, तो आए वह सामने। खुली चुनौती है। या वह है या मैं हूँ।"

ऐसा कहकर उस वीर सिंह ने वह तुमुल घोर गर्जन किया कि दिशाएँ काँपने लगीं। बड़ दादा के देह के पत्र खड़-खड़ करने लगे। उनके शरीर के कोटर मे वास करते हुए शावक चीं-चीं कर उठे। चहुँओर जैसे आतंक भर गया पर वह गर्जन गूँजकर रह गई। हुंकार का उत्तर कोई नहीं आया।

सिंह ने उस समय गर्व से कहा, "तुमने यह कैसे जाना कि कोई वन है और वह आस-पास रहता है। जब मैं हूँ आप सब निर्भय रहिए कि वन कोई नहीं है, कही नहीं है। मैं हूँ, तब किसी और का खटका आपको नहीं रखना चाहिए।"

बड दादा ने कहा, "आपकी बात सही है। मुझे यहाँ सदियाँ हो गई हैं। वन होता तो दीखता अवश्य। फिर आप हो, तब कोई और क्या होगा। पर वे दो शाखा पर चलने वाले जीव जो आदमी होते हैं, वे ही यहाँ मेरी छाँह में बैठकर उस वन की बात कर रहे थे। ऐसा मालूम होता है कि ये बे-जड़ के आदमी हमसे ज़्यादा जानते हैं।"

सिंह ने कहा, "आदमी को मैं खूब जानता हूँ। मैं उसे खाना पसंद करता हूँ। उसका मांस मुलायम होता है; लेकिन वह चालाक जीव है। उसको मुँह मारकर खा डालो, तब तो वह अच्छा है, नहीं तो उसका भरोसा नहीं करना चाहिए। उसकी बात-बात में धोखा है।"

बड दादा तो चुप रहे, लेकिन औरों ने कहा कि सिंहराज, तुम्हारे भय से बहुत से जतु छिपकर रहते हैं। वे मुँह नहीं दिखाते। वन भी शायद छिपकर रहता हो। तुम्हारा दबदबा कोई कम तो नही है। इससे जो साँप धरती मे मुँह गाड़कर रहते हैं, ऐसी भेद की बातें उनसे पूछनी चाहिए। रहस्य कोई जानता होगा, तो अँधेरे में मुँह गाड़कर रहने वाला साँप जैसा जानवर ही जानता होगा। हम पेड़ तो उजाले में सिर उठाए खड़े रहते हैं। इसलिए हम बेचारे क्या जानें।

शेर ने कहा कि जो मैं कहता हूँ, वही सच है। उसमें शक करने की हिम्मत ठीक नहीं है। जब तक मैं हूँ, कोई डर न करो। कैसा साँप और जैसा कुछ और। क्या कोई मुझसे ज़्यादा जानता है?

बड़ दादा यह सुनते हुए अपनी दाढ़ी की जटाएँ नीचे लटकाए बैठे रह गए, कुछ नहीं बोले। औरों ने भी कुछ नहीं कहा। बबूल के काँटे ज़रूर उस वक्त तनकर कुछ उठ आए थे। लेकिन फिर भी बबूल ने धीरज नहीं छोड़ा और मुँह नहीं खोला।

अंत में जम्हाई लेकर मंथर गति से सिंह वहाँ से चले गए।

भाग्य की बात कि साँझ का झुटपुटा होते-होते चुप-चुप घास में से जाते हुए दीख गए चमकीली देह के नागराज। बबूल की निगाह तीखी थी। झट से बोला, "दादा ! ओ बड़ दादा, वह जा रहे हैं सर्पराज। ज्ञानी जीव हैं। मेरा तो मुँह उनके सामने कैसे खुल सकता है। आप पूछिए तो ज़रा कि वन का ठौर-ठिकाना क्या उन्होंने देखा है?"

बड़ दादा शाम से ही मौन हो रहते हैं। वह उनकी पुरानी आदत है। बोले, "संध्या आ रही है। इस समय वाचालता नही चाहिए।"

बबूल झक्की ठहरे। बोले, "बड़ दादा, साँप धरती से इतना चिपककर रहते हैं कि सौभाग्य से हमारी आँखें उ. पर पड़ती हैं। और यह सर्प अतिशय श्याम है, इससे उतने ही ज्ञानी होंगे। वर्ण देखिए न, कैसा चमकता है। अवसर खोना नहीं चाहिए। इनसे कुछ रहस्य पा लेना चाहिए।"

बड दादा ने तब गभीर वाणी से साँप को रोककर पूछा कि हे नाग, हमे बताओ कि वन का वास कहाँ है और वह स्वयं क्या है?

साँप ने साश्चर्य कहा, "किसका वास? वह कौन जंतु है? और उसका वास पाताल तक तो कहीं है नहीं।"

बड़ दादा ने कहा कि हम कोई उसके संबंध में कुछ नहीं जानते। तुमसे जानने की आशा रखते हैं। जहाँ ज़रा छिद्र हो, वहाँ तुम्हारा प्रवेश है। कोई टेढ़ा-मेढ़ापन तुमसे बाहर नहीं है। इससे तुमसे पूछा है।

साँप ने कहा, "मैं धरती के सारे गर्त जानता हूँ। भीतर दूर तक पैठकर उसी के अंतर्भेद को पहचानने में लगा रहा हूँ। वहाँ ज्ञान की खान है। तुमको अब क्या बताऊँ। तुम नहीं समझोगे। तुम्हारा वन, लेकिन कोई गहराई की सचाई नहीं जान पडती। वह कोई बनावटी सतह की चीज़ है। मेरा वैसा ऊपरी और उथली बातों से वास्ता नहीं रहता।"

बड़ दादा ने कहना चाहा कि तो वह–

साँप ने कहा, "वह फ़र्ज़ी है।" यह कहकर वह आगे बढ़ गए।

मतलब यह है कि सब जीव-जंतु और पेड़-पौधे आपस में मिले और पूछताछ करने लगे कि वन को कौन जानता है और वह कहाँ है, क्या है? उनमें सबको ही अपना-अपना ज्ञान था। अज्ञानी, कोई नहीं था। पर उस वन का जानकार कोई नहीं था। एक नहीं जाने, दो नहीं जानें, दस-बीस नहीं जानें, लेकिन जिसको कोई नहीं जानता, ऐसी भी भला कोई

चीज़ कभी हुई है या हो सकती है? इसलिए उन जंगली जंतुओं में और वनस्पतियों में खूब चर्चा हुई, खूब चर्चा हुई। दूर-दूर तक उनकी तू-तू मैं-मैं सुनाई देती थी। ऐसी चर्चा हुई, ऐसी चर्चा हुई कि विद्याओ पर विद्याएँ उसमें से प्रस्तुत हो गईं। अंत में तय पाया कि दो टाँगोंवाला आदमी ईमानदार जीव नहीं है। उसने तभी वन की बात बनाकर कह दी है। वन बन गया है। सच में वह नहीं है।

उस निश्चय के समय बड़ दादा ने कहा कि भाइयो, उन आदमियों को फिर आने दो। इस बार साफ़-साफ़ उनसे पूछना है कि बताएँ, वन क्या है। बताएँ तो बताएँ, नहीं तो खामखाह झूठ बोलना छोड़ दें। लेकिन उनसे पूछने से पहले उस वन से दुश्मनी ठानना हमारे लिए ठीक नहीं है। वह भयावना बताते हैं। जाने वह और क्या हो?

लेकिन बड़ दादा की वहाँ विशेष चली नहीं। जवानो ने कहा कि ये बूढे हैं, इनके मन में तो डर बैठा है। और जंगल के न होने का फ़ैसला पास हो गया।

एक रोज़ आफ़त के मारे फिर वे शिकारी उस जगह आए। उनका आना था कि जंगल जाग उठा। बहुत से जीव-जंतु, झाड़ी पेड़ तरह-तरह की बोली बोलकर अपना विरोध दरसाने लगे। वे मानों उन आदमियो की भर्त्सना कर रहे थे। आदमी बेचारों को अपनी जान का संकट मालूम होने लगा। उन्होने अपनी बंदूकें सँभालीं। इस टूटी-सी टहनी को, जो आग उगलती है, वह बड़ दादा पहचानते थे। उन्होंने बीच में पडकर कहा, "अरे तुम लोग अधीर क्यो होते हो? इन आदमियों के खतम हो जाने से हमारा-तुम्हारा फ़ैसला निर्भ्रम कहलाएगा। ज़रा तो ठहरो। गुस्से से कहीं ज्ञान हासिल होता है? ठहरो, इन आदमियो से उस सवाल पर मैं खुद निपटारा किए लेता हूँ।" यह कहकर बड़ दादा आदमियों से मुखातिब करके बोले, "भाई आदमियो, तुम भी पोली चीज़ों का नीचा मुँह करके रखो जिनमें तुम आग भर कर लाते हो। डरो मत। अब यह बताओ कि वह जंगल क्या है, जिसकी तुम बात किया करते हो? बताओ, वह कहाँ है?"

आदमियों ने अभय पाकर अपनी बंदूकें नीची कर लीं और कहा, "यह जंगल ही तो है, जहाँ हम सब हैं।"

उनका इतना कहना था कि चींचीं-कींकीं, सवाल पर सवाल होने लगे।

"जंगल यहाँ कहाँ है ! कहीं नहीं है।"

"तुम हो। मैं हूँ। यह है। वह है। जगल फिर हो कहाँ सकता है?"

"तुम झूठे हो।"

"धोखेबाज़।"

"स्वार्थी !"

"खतम करो इनको"

आदमी यह देखकर डर गए। बंदूकें सँभालना चाहते थे कि बड़ दादा ने मामला सँभाला और पूछा, "सुनो आदमियो, तुम झूठे साबित होगे, तभी तुम्हें मारा जाएगा। क्या यह आगफेंकनी लिए फिरते हो। तुम्हारी बोटी का पता न मिलेगा। और अगर झूठे नहीं हो, तो बताओ जंगल कहाँ है?"

उन दोनों आदमियों में से प्रमुख ने विस्मय से और भय से कहा, "हम सब जहाँ हैं, वही तो जंगल है।"

बबूल ने अपने काँटे खड़े करके कहा, "बको मत, वह सेमर है, वह सिरस है, साल है, वह घास है। वह हमारे सिंहराज हैं। वह पानी है। वह धरती है। तुम जिनकी छाँह में हो, वह हमारे बड़ दादा हैं। तब तुम्हारा जंगल कहाँ है, दिखाते क्यों नहीं? तुम हमको धोखा नहीं दे सकते।"

प्रमुख पुरुष ने कहा, "यह सब कुछ ही जंगल है।"

इस पर गुस्से से भरे हुए कई वनचरों ने कहा, "बात से बचो नहीं। ठीक बताओ, नहीं तो तुम्हारी खैर नहीं है।"

अब आदमी क्या कहें, परिस्थिति देखकर वे बेचारे जान से निराश होने लगे। एक ने कहा, "यार, यह क्यों नहीं कह देते कि जंगल नहीं है। देखते नहीं, किन से पाला पडा है !"

दूसरे ने कहा, "मुझसे तो कहा नहीं जाएगा।"

"तो क्या मरोगे?"

"सदा कौन जिया है? इससे इन भोले प्राणियों को भुलावे में कैसे रखूँ?"

यह कहकर प्रमुख पुरुष ने सबसे कहा, "भाइयो, जंगल कहीं दूर या बाहर नहीं है। आप लोग सभी वह हो।"

इस पर फिर गोलियों-से सवालो की बौछार उन पर पड़ने लगी।

"क्या कहा? मैं जंगल हूँ? तब बबूल कौन है?"

"झूठ ! क्या मैं यह मानूँ कि मैं बाँस नहीं जंगल हूँ। मेरा रोम-रोम कहता है, मैं बाँस हूँ।"

"और मैं घास।"

"और मैं शेर।"

"और मैं साँप।"

इस भाँति ऐसा शोर मचा कि उन बेचारे आदमियो की अकल गुम होने को आ गई। बड़ दादा न हों, तो आदमियों का काम वहाँ तमाम था।

उस समय आदमी और बड़ दादा में कुछ ऐसी धीमी-धीमी बातचीत हुई कि वह कोई सुन नहीं सका। बातचीत के बाद वह पुरुष उस विशाल बड़ के वृक्ष के ऊपर चढ़ता दिखाई दिया। चढ़ते-चढ़ते वह उसकी सबसे ऊपर की फुनगी तक पहुँच गया। वहाँ दो नए-नए पत्तों की जोड़ी खुले आसमान की तरफ़ मुसकराती हुई देख रही थी। आदमी ने उन दोनों को बड़े प्रेम से पुचकारा। पुचकारते समय ऐसा मालूम हुआ, जैसे मंत्ररूप में उन्हें कुछ संदेश भी दिया है।

वन के प्राणी यह सब-कुछ स्तब्ध भाव से देख रहे थे। उन्हें कुछ समझ मे न आ रहा था।

देखते-देखते पत्तों की वह जोड़ी उद्ग्रीव हुई। मानो उसमें चैतन्य भर आया। उन्होंने अपने आस-पास और नीचे देखा। जाने उन्हें क्या दिखा कि वे काँपने लगे। उनके तन में लालिमा व्याप गई। कुछ क्षण बाद मानो वे एक चमक से चमक आए। जैसे उन्होंने खंड को कुल में देख लिया। देख लिया कि कुल है, खंड कहाँ है।

वह आदमी अब नीचे उतर आया था और अन्य वनचरों के समकक्ष खड़ा था। बड़ दादा ऐसे स्थिर-शांत थे, मानो योगमग्न हों कि सहसा उनकी समाधि टूटी। वे जागे। मानो उन्हें अपने चरमशीर्ष से, अभ्यंतराभ्यंतर में से, तभी कोई अनुभूति प्राप्त हुई हो।

उस समय सब ओर सप्रश्न मौन व्याप्त था। उसे भंग करते हुए बड़ दादा ने कहा–

"वह है।"

कहकर वह चुप हो गए। साथियों ने दादा को संबोधित करते हुए कहा, "दादा, दादा!"

दादा ने इतना ही कहा–

"वह है, वह है"

"कहाँ है? कहाँ है?"

"सब कहीं है। सब कहीं है।"

"और हम?"

"हम नहीं, वह है।"

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

मौखिक

1. शिकारी की बाते सुनकर शीशम के पेड ने बड़ दादा से क्या कहा?
2. 'इनमे पत्ते नही होते, तना ही तना है।' बड़ दादा ने यह वाक्य किनके लिए और क्यो कहा?
3. पशु और पेड-पौधे वन के नाम से क्यो भय खाने लगे थे?
4. शिकारियों के पुनः वन मे आने पर पशु और वनस्पतियाँ क्यों भडक उठी?
5. शिकारी प्रमुख ने अपने साथी शिकारी की सलाह क्यो नही मानी?
6. खड-खंड कुल रूप में कब दिखाई पड़ता है?
7. इस कहानी में 'तत्सत्' का प्रयोग निम्नलिखित मे से किस अर्थ मे हुआ है – सही अर्थ पर चिह्न लगाइए:
   (i) वन में रहने वाले प्राणियों के लिए
   (ii) समग्रता के लिए
   (iii) वन की भयानकता के लिए
   (iv) वन के पेड़-पौधो के लिए।

लिखित

1. 'इनमे जडें नहीं होती' इस वाक्य में निहित व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।
2. "दु:ख से मेरी बहुत बनती है? घास यह क्यों कहती है।
3. घास को बुद्धिमती और वशबाबू (बाँस) को वाग्मी क्यो कहा गया है?
4. बड़ दादा को यह विश्वास क्यों था कि साँप से वन का रहस्य ज्ञात हो जाएगा?
5. पशुओं और वनस्पतियो की इस धारणा को कि आदमी स्वार्थी और धोखेबाज होते हैं, प्रमुख शिकारी ने किस प्रकार झुठला दिया?
6. वन की सकल्पना को पेड़-पौधे और पशु स्वीकार क्यो नही कर पा रहे थे?
7. पत्तों की जोड़ी एकाएक किस चमक से चमक उठी?
8. बड़ दादा को यह अहसास कब हुआ कि वन है?
9. लेखक ने अंश और सपूर्ण के सबंध का स्पष्टीकरण किस प्रकार किया है?
10. कहानी से उन पक्तियो को छाँटकर लिखिए जिनसे निम्नलिखित अर्थ का बोध होता हो:
    (i) थोथा चना बाजे घना।
    (ii) वयोवृद्ध से समझदार होने की अधिक अपेक्षा रहती है।
    (iii) मज़बूत नीव पर ही ऊँची इमारत खड़ी हो सकती है।

(iv) वर्तमान समाज मे विभिन्न मंचों से हुई बहसो का सामान्यत कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

11. 'तत्सत्' शीर्षक की सार्थकता पर टिप्पणी कीजिए।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित **क वर्ग** के वाक्यो का **ख वर्ग** से मिलान कीजिए:

क वर्ग	ख वर्ग
(क) हमारी-तुम्हारी तरह इनमें जड़ें नहीं होती।	आज्ञार्थक
(ख) यह जगल ही है, जहाँ हम सब रहते हैं।	प्रश्नवाचक
(ग) खतम करो इनको।	निषेधात्मक
(घ) बिना जाने फिर इतना तेज क्यो बोलते हो?	विधानवाचक
(ङ) मेरे सामने वह भला क्या हो सकता है !	शर्तवाचक
(च) यदि जड़ न हो तो वे जीते किस प्रकार हैं?	विस्मयादिबोधक

2 निम्नलिखित मिश्र वाक्यो में से प्रधान उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य छाँटकर लिखिए–
   (क) अगर कोई रहस्य जानता होगा, तो अँधेरे मे मुँह गाडकर रहने वाला साँप जैसा जानवर ही जानता होगा।
   (ख) बहुत से जीव-जंतु, झाडियाँ, पेड़ तरह-तरह की बोली बोलकर अपना विरोध दरसाने लगे, मानो वे उन आदमियो की भर्त्सना कर रहे थे।
   (ग) जब तक मैं हूँ, तब तक कोई डर न करो।
   (घ) पुचकारते समय ऐसा मालूम हुआ, जैसे मन्त्ररूप में उन्हें कुछ संदेश भी दिया है।
   (ङ) उस निश्चय के समय बड दादा ने कहा कि भाइयो, उन आदमियों को फिर आने दो।

3. निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध कीजिए:
   (क) तुम उस भयावने वन को देखे हो।
   (ख) बताइए, तुमने वन देखा है?
   (ग) घास ही घास, तू वन को जानता है?
   (घ) उसको मारकर मत खा डालो।
   (ङ) मेरे से कहा नही जाएगा।

   निम्नलिखित अंश मे उपयुक्त विरामचिह्न लगाइए:
   बबूल झट से बोला दादा ओ बड़ दादा वे जा रहे हैं सर्पराज ज्ञानी जीव हैं मेरा तो मुँह उनके सामने कैसे खुल सकता है आप पूछिए तो ज़रा कि वन का ठौर ठिकाना क्या उन्होंने देखा है।

शब्दार्थ और टिप्पणी

ओछे	–	छोटे कद वाले, तुच्छ
वाग्मी	–	वाचाल, घमंडी
किलक-किलककर	–	कल-कल ध्वनि से
चश्मे	–	पानी का सोता
तुमुल	–	भयकर
कोटर	–	पेड़ का खोखला भाग
खटका	–	शका
अंतर्भेद	–	रहस्य
निर्भ्रम	–	भ्रम रहित
उद्ग्रीव	–	ऊपर उठना
चैतन्य	–	ज्ञान ज्योति
लालिमा	–	ज्ञान की चेतना
खंड	–	टुकड़े-टुकडे, भिन्न-भिन्न अश
कुल	–	समग्र, एकत्व
अभ्यंतराभ्यंतर	–	अतःकरण

निर्मल वर्मा



निर्मल वर्मा का जन्म सन 1928 में शिमला (हिमाचल प्रदेश) में हुआ। बचपन का समय पर्वतीय प्रदेश में व्यतीत हुआ। दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए. करने के बाद उन्होंने अध्यापन कार्य आरंभ किया। प्रारंभ में मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण वे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने, परंतु सन 1956 में उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी से त्यागपत्र दे दिया। चेकोस्लोवाकिया के प्राच्य-विद्या-सस्थान, प्राग के निमंत्रण पर वे सन 1956 में वहाँ गए और चेक उपन्यासों तथा कहानियो का हिंदी अनुवाद किया।

वर्मा जी को हिंदी के समान ही अंग्रेज़ी पर भी अधिकार प्राप्त है। उन्होने 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'हिंदुस्तान टाइम्स' के लिए यूरोप की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक समस्याओ पर अनेक लेख और रिपोर्ताज लिखे हैं, जो उनके निबंध संग्रहो में संकलित हैं। सन 1970 में भारत आने पर उन्होने स्वतंत्र लेखन का मार्ग अपनाया।

निर्मल वर्मा का मुख्य योगदान हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में है। ***परिंदे, जलती झाड़ी, तीन एकांत, कव्वे और काला पानी*** *आदि कहानी-संग्रह और* ***वे दिन, लाल टीन की छत*** *तथा* ***एक चिथड़ा सुख*** *उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।* ***चीड़ों पर चाँदनी*** *में उनके यात्रा-संस्मरण संकलित हैं।* ***हर बारिश में, शब्द और स्मृति*** *तथा* ***कला का जोखिम*** *उनके निबंध-संग्रह हैं जिनमें विविध विषयो का विवेचन मिलता है। सन 1985 मे* ***कव्वे और काला पानी*** *पर उनको 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार मिला है। इसके अतिरिक्त वे कई अन्य पुरस्कारों से भी सम्मानित किए जा चुके है।*

वर्माजी की निबंध-शैली में एक ऐसी अनोखी कसावट, है जो विचार-सूत्र की गहनता को विविध उद्धरणों से रोचक बनाती हुई विषय का विस्तार करती है। शब्द-

चयन मे जटिलता न होते हुए भी उनकी वाक्य-रचना मे मिश्र और संयुक्त वाक्यों की प्रधानता है। स्थान-स्थान पर उन्होने उर्दू और अंग्रेज़ी के शब्दो का स्वाभाविक प्रयोग किया है जिससे उनकी भाषा शैली में अनेक नवीन प्रयोगों की झलक मिलती है।

प्रस्तुत निबंध मे लेखक ने स्वतंत्रता के बाद के पचास वर्षो का विहंगावलोकन करते हुए एक ऐसा प्रश्न उठाया है जो लगभग हर भारतीय को समय-समय पर कचोटता है और वह प्रश्न है भारतीयता की भावना का। उनके अनुसार भारतीयता कोई सतही, सस्ती भावुकता नहीं है, वह 'आत्मा की घटना' है। यह एक ऐसी भावना है जो संस्कृ‍ति एवं परंपरा से गहरे जुड़ी है। यह जुड़ना ही हमे सार्थकता प्रदान करता है। इसलिए हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि भारतीय संस्कृति की धारा न सूखने पाए। उसके लिए हमें सकीर्ण राजनैतिक सैद्‌धांतिक आग्रहों से ऊपर उठना होगा।

मेरे लिए भारतीय होने का अर्थ

स्वतंत्रता को मिले पचास वर्ष गुज़र गए। मैं क्या सोचता हूँ? लोग पूछते हैं, परिचर्चाएँ होती हैं, जश्न मनाए जाते हैं – लेकिन फिर भी लगता है, जैसे हाथ से कुछ छूट गया है, कोई भरा-पूरा प्रतीक, जिसको हम उस जमीन, ज़मीन के टुकड़े के साथ संपृक्त कर सके, जिसे देश की संज्ञा दी जाती है। क्या मै उसे प्यार करता हूँ? क्या ज़मीन के एक टुकड़े से प्यार किया जा सकता है, जिसका अपना आकाश है, समय है, अतीत है; जहाँ जीते हुए लोग ही नही, मृतात्माएँ भी बसती हैं? देशभक्ति, देशप्रेम ..क्या ये सिर्फ़ थोथे शब्द हैं, जिन्हें हमारे आधुनिक बुद्धिजीवी मुँह पर लाते हुए झिझकते हैं, जैसे वे कोई अपशब्द हों, सिर्फ़ एक सतही, सस्ती भावुकता, और कुछ नही? कौन स्वतंत्र हुआ वे हिकारत से पूछते हैं...गरीब, अमीर, छोटे, बड़े, कौन और यदि कोई उत्तर मे कहे, मैं और तुम नहीं, बल्कि....वह, जो हमारे बीच में है, हमें बाँधता हुआ, शताब्दियों से हमें 'हम' बनाता हुआ, खुद अदृश्य होते हुए भी हमे एक परिदृश्य में अकित करता हुआ...क्या है यह? क्या इस अनाम भावना को कोई नाम दिया जा सकता है?

भावनाएँ भी घटनाएँ होती हैं, आत्मा की घटनाएँ। मेरे लिए 'देशप्रेम' एक ऐसी ही घटना है। मेरे जीवन में यह घटना कब घटी, कहना असंभव है, किंतु एक बार जन्म लेने के बाद वह एक बेल की तरह फैलती गई। यह एक विचित्र भावना है, जो किसी घटना की प्रतिक्रिया में नही जगती, बल्कि स्वयं अपने भीतर उच्छ्वसित होती है। हम उस पर अँगुली नहीं रख सकते, जैसे हम देश को छूकर उसकी समग्रता नहीं पा सकते, सिवा एटलस के नक्शे पर, किंतु नक्शा उतना बड़ा ही होना चाहिए, जितना बड़ा देश है, उसकी ज़मीन, पहाड़ों, नदी-नालो के इंच-इंच को अपने में समोता हुआ ! नहीं, देश के प्रति यह लगाव न तो इतिहास में अंकित है, न भूगोल की छडी से नापा जा सकता है, क्योंकि

अंततः वह...एक स्मृति है, व्यक्तिगत जीवन से कहीं अधिक विराट और समय की सीमाओं से कही अधिक विस्तीर्ण...हमारे समस्त पूर्वजन्मों का पवित्र-स्थल, जहाँ कभी हमारे पूर्वज और पुरखे रहते आए थे। यदि हर भावना एक घटना है, तो 'देशप्रेम' एक चिरंतन घटना है, हर पीढ़ी की आत्मा में नए सिरे से घटती हुई।

किंतु वह कोई अमूर्त भावना नहीं; एक कविता की तरह वह किसी ठोस घटना अथवा अनुभव के धुँधले, टीसते, टिमटिमाते बिंदु से उत्पन्न हो सकती है। अपनी बात कहूँ तो मुझे बचपन का वह क्षण याद आता है, जब मैं माँ के साथ ट्रेन में बैठकर जा रहा था। कहाँ जा रहा था, कुछ याद नहीं, सिर्फ़ इतना याद है कि मैं सो रहा था, अचानक मुझे धड़धड़ाती-सी आवाज़ सुनाई दी; हमारी ट्रेन पुल पर से गुजर रही थी। माँ ने जल्दी से मेरे हाथ में कुछ पैसे रखे और मुझसे कहा कि मैं उन्हें नीचे फेक दूँ। नीचे नदी में। नदी? कहाँ थी वह? मैंने पुल के नीचे झाँका, शाम के डूबते आलोक में एक पीली डबडबाई-सी रेखा चमक रही थी। पता नहीं, वह कौन-सी नदी थी, गंगा, कावेरी या नर्मदा? मेरी माँ के लिए सब नदियाँ पवित्र थीं।

यह मेरे लिए अपने देश 'भारत' की पहली छवि थी, जो मेरी स्मृति में टँगी रह गई है...वह शाम वह पुल के परे रेत के ढूह और वह डूबता सूरज और एक अनाम नदी...कहीं से कही की ओर जाती हुई ! मुझे लगता है, अपने देश के साथ मेरा प्रेम-प्रसंग यहीं से शुरू हुआ था ..उत्पीड़ित, उन्मादपूर्ण, कभी-कभी बेहद निराशापूर्ण; किंतु आज मुझे लगता है कि अन्य प्रेम-प्रसंगों की तुलना में वह कितनी छोटी-सी घटना से शुरू हुआ था, माँ का मुझे सोते मे हिलाना, दिल की धड़कन, नदी मे फेंका हुआ पैसा....बस इतना ही !

बाद के वर्षों में मेरे भीतर यह विश्वास जमता गया कि देशप्रेम यदि 'आत्मा की घटना' है, तो वह सिर्फ़ एक ऐसी संस्कृति में पल्लवित होती है, जहाँ 'स्पेस' और 'स्मृति' अंतर्गुंफित हो सकें। मनुष्य और पशु के संबंध की बात तो अलग रही, उन चीज़ों का परस्पर संबंध भी बहुत गहरा हो, जो ऊपर से अजीवंत दिखाई देते है...पत्थर, नदी, पहाड़, पेड़...आपस मे किंतु अपने अंतर्संबंधों में वे एक जीवंत पवित्रता का गौरव, एक तरह की धार्मिक सवेदना ग्रहण कर लेते हैं। यह क्या महज़ संयोग था कि हमारे यहाँ प्रकृति के इन आत्मीय उपकरणो के प्रति लगाव ने 'देशभक्ति' की भावना को जन्म दिया। क्या भारत का कोई ऐसा कोना है, जहाँ रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओ के

प्रतीक मनुष्य को अपने जीवन की अर्थवत्ता पाने में सहायक नहीं होते? यदि एक भूखंड में जीता हुआ व्यक्ति एक 'रूपक' में अपने होने का प्रत्यक्षीकरण करता है, तो यह वहीं संभव हो सकता है, जहाँ भूगोल की देह पर संस्कृति के स्मृति-स्थल अंकित रहते हैं। पत्थर को छूते हुए कोई देवता, नदी का स्पर्श करते ही कोई स्मृति, पहाड़ पर चढते हुए किसी पौराणिक यात्रा की अंतर्कथा ऐसे पदचिह्न हैं, जिन पर कदम रखते हुए हम अपनी जीवन-यात्रा को तीर्थ-यात्रा में परिणत कर लेते हैं।

अतीत में देश के प्रति यह भावना अन्य देशों में भी देखी जा सकती थी, जहाँ देश-प्रेम का गहरा संबंध संस्कृति और परंपरा की स्मृति से जुड़ा था। मुझे तारकोवस्की की फिल्म 'मिरर' की याद आती है, जिसमें एक पात्र पुश्किन का पत्र अपने एक मित्र को पढकर सुनाता है, और उस पत्र में पुश्किन रूस के बारे में जो कुछ अपने उद्‌गार प्रकट करते हैं, वे एक अजीब तरह का आध्यात्मिक उन्मेष लिए हुए हैं। वे लिखते हैं, "एक लेखक होने के नाते मुझे कभी-कभी अपने देश के प्रति गहरी झुँझलाहट और कटुता महसूस होती है, लेकिन मैं सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैं किसी भी कीमत पर अपना देश किसी से नहीं बदलना चाहूँगा। न ही अपने देश के इतिहास को किसी दूसरे इतिहास में परिणत करना चाहूँगा, जो ईश्वर ने मेरे पूर्वजों के हाथों मे दिया था।"

शब्द पुश्किन के हैं, अपने देश 'मदर रशिया' के बारे में, लेकिन उनमे देशभक्ति का एक ऐसा धार्मिक आयाम दिखाई देता है, जिसमें हमें स्वामी विवेकानद, श्री अरविद और गांधीजी की भावनाएँ प्रतिध्वनित होती सुनाई देती हैं, जो उन्होंने समय-समय पर गहरे भावोन्मेष के साथ भारत-भूमि के प्रति प्रकट की थीं। आज के आधुनिक भारतीय धर्मनिरपेक्षीय बुद्‌धिजीवियों को भारत के संदर्भ में ईश्वर और पूर्वजों की स्मृति का उल्लेख करना कितना अजीब जान पड़ता होगा, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। वे लोग तो 'वंदेमातरम्' जैसे गीत में भी सांप्रदायिकता सूँघ लेते हैं। सच बात तो यह है कि देशप्रेम की भावना को देश से जुड़ी स्मृतियों और उसके इतिहास की धूल मे सनी पीड़ाओं को अलग करते ही इस भावना की गरिमा और पवित्रता नष्ट हो जाती है।

कोई राष्ट्र जब अपनी सांस्कृतिक जड़ों से उन्मूलित होने लगता है, तो भले ही ऊपर से बहुत सशक्त और स्वस्थ दिखाई दे.. भीतर से मुरझाने लगता है। स्वतंत्रता के बाद भारत के सामने यह सबसे दुर्गम चुनौती थी...पाँच हज़ार वर्ष पुरानी परंपरा से क्या ऐसे 'राष्ट्र' का जन्म हो सकता है, जो अपने में 'एक' होता हुआ भी उन 'अनेक' स्रोतो से

अपनी संजीवनी शक्ति खींच सके, जिसने भारतीय सभ्यता का रूप-गठन किया था। कोई परंपरा इतनी छोटी, इतनी नगण्य नहीं थी, जिसकी 'आवाज़' भारतीय संस्कृति की मुख्य धारा में से जुड़कर अपनी विशिष्ट लय में अनुगुंजित न होती हो। बहुत वर्ष पहले जब मैंने मध्य प्रदेश के हृतस्थल मे नर्मदा को सहस्त्र धाराओं में फूटते देखा था, तो मुझे वह भारतीय संस्कृति का सबसे उजला प्रतीक जान पड़ा था।

क्या यह प्रतीक आज कुछ मैला-सा नहीं पड़ गया?

पिछले पचास वर्षो मे यदि कोई सबसे दुखदायी घटना हुई है, तो यह कि हमने भारतीय संस्कृति की इस प्रवहमान धारा को धीरे-धीरे सूख जाने दिया। शताब्दियों से हमारे देश की सीमाएँ वे स्वागत-द्‌वार रहे हैं, जिनके भीतर आते ही उत्पीड़ित और त्रस्त जातियाँ अपने को सुरक्षित पाती रही हैं। सातवीं-आठवीं शती में ईरान पर इस्लामी आक्रमण के बाद पारसियों ने अपना शरण-स्थल भारत में ही ढूँढ़ा था। कौन सोच सकता था कि यूरोप से भागे हुए यहूदियों को सुरक्षा देनेवाले कोचीन के एक हिंदू राजा होंगे...जो न केवल उन्हें सहायता देंगे, बल्कि अपने राज्य में उन्हें अपना प्रार्थना-गृह, सिनागौग बनाने मे मदद करेंगे। हज़ारों तिब्बत निवासियों और भिक्षुओं का दलाई लामा के साथ भारत में शरण लेने आना तो कोई पुरानी घटना भी नहीं है, जिसे भुलाया जा सके। एक प्राचीन वट-वृक्ष की तरह भारतीय संस्कृति ने अपनी छाया तले सैकड़ों जातियों, जनजातियो, धार्मिक समुदायों को वह पवित्र स्थान प्रदान किया था जहाँ वे मुक्त हवा में साँस ले सकें। यह केवल सहिष्णुता की बात नहीं थी, जहॉ 'अन्य' को अपने से अलग मानकर उसे सहन किया जाता था, बल्कि इसके पीछे कहीं यह मान्यता काम करती थी कि विभिन्न विश्वासों के बीच सत्य की सत्ता समान रूप से क्रियाशील रहती है. .अपने में अखंडित और अपरिवर्तनशील ! भारतीय सभ्यता को अपनी यह अनमोल अंतर्दृष्टि स्वयं अपनी आध्यात्मिक परंपरा से प्राप्त हुई थी, जहॉ 'आत्म' और 'अन्य' के बीच का भेद अविद्‌या का लक्षण था, सत्य का नहीं।

देखा जाए, तो यह 'विचार तत्त्व' ही है, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन की विपन्नता और ऐतिहासिक दुर्घटनाओं के बावजूद इस देश को बचाए रखने में सफल हुआ है। देश-विभाजन से बड़ी भीषण दुर्घटना और क्या हो सकती थी? यदि गांधीजी के लिए यह उनके जीवन का सबसे मर्मांतक घाव था, तो इसलिए कि आज के अनेक राजनेताओं की तरह उनके लिए देश की भौगोलिक अखंडता सिर्फ़ एक संवैधानिक बात नहीं थी,

जहाँ सिर्फ़ देश की सीमाओं को सुरक्षित रखना महत्त्वपूर्ण हो। इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इन सीमाओं के भीतर शताब्दियों से हमारे पुरखों-पूर्वजों ने एक-दूसरे के साथ अपने अनुभवों, स्मृतियों, स्वप्नों का साँझा किया था – एक जीवित संग्रहालय – जिसमें कला, साहित्य और दर्शन की असाधारण रचनाएँ सृजित हुई थीं। कश्मीर केवल भौगोलिक दृष्टि से भारत का नहीं रहा, बल्कि अलबरूनी के शब्दों में हिंदू दर्शन और आध्यात्मिक शोध का यदि काशी के बाद कोई अध्ययन-केंद्र था, तो वह कश्मीर था। शैव-बौद्ध दर्शन और राजतरंगिणी जैसी इतिहास-रचनाओं को क्या कभी हम अपनी पारंपरिक संपदा से अलग कर देख सकते हैं? धर्म-परिवर्तन से ही किसी देश का अतीत परिवर्तन नहीं हो जाता। एक देश की पहचान सिर्फ़ उन लोगों से नहीं बनती, जो आज उसमें जीते हैं, बल्कि उनसे भी बनती है, जो एक समय में जीवित थे और आज उसकी मिट्टी के नीचे दबे हैं। समय के बीतने के साथ भूमि की भौगोलिक सीमाएँ धीरे-धीरे संस्कृति के नक्शे में बदल जाती हैं। एक के खंडित होते ही दूसरे की गरिमा को भी चोट पहुँचती है।

एक अंतिम शब्द – हमे कभी अपने समाज की कुरीतियों, अपने सत्ताधारी नेताओं की स्वार्थलिप्साओं को अपने देशप्रेम से गडमड नहीं करना चाहिए। मेरे लिए, मेरा देश मेरे राजनीतिक, सैद्धांतिक आग्रहों से कहीं ऊपर है...या होना चाहिए। गांधीजी से बड़ा भारत-प्रेमी कौन हो सकता था, लेकिन वह भारतीय समाज के सबसे बड़े आलोचक भी थे – क्योंकि जो व्यक्ति हृदय से अपने देश से प्यार करता है, उसे ही आलोचना का अधिकार भी प्राप्त होता है।

मुझे नहीं मालूम, आज यह कितना संभव है....लेकिन उस शाम मैने उसकी एक झलक देखी थी, जब मैंने अपनी माँ के कहने पर पुल के नीचे बहती नदी में पैसे फेंके थे। मेरी माँ अब नहीं हैं...लेकिन मैं सोचता हूँ, वह नदी अब भी है। प्रार्थना करता हूँ कि बिलकुल सूख नहीं गई है।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

मौखिक

1. 'शताब्दियो से हमें "हम" बनाता हुआ' कथन का आशय है – हमें
   (क) हमारा परिचय कराता हुआ

(ख) व्यष्टि से समष्टि में परिवर्तित करता हुआ
(ग) हमारे अतीत के गौरव का भान कराता हुआ
(घ) हमारी स्वतंत्रता की याद दिलाता हुआ।

2. 'भारत' की वह कौन-सी छवि थी, जो लेखक की स्मृति में टॅगी रह गई?
3. लेखक ने भारतीय संस्कृति की स्मृति जगाने के लिए किन-किन वस्तुओं का उल्लेख किया है?
4. पुश्किन के पत्र में व्यक्त विचारो मे कौन-कौन से भारतीय मनीषियों की भावनाएँ प्रतिध्वनित होती हैं?
5. देश के इतिहास मे किस घटना को पिछले पचास वर्ष की सबसे दुखदायी घटना माना गया है?

लिखित

1 यह प्रश्न क्यो किया जाता करता है कि क्या जमीन के एक टुकड़े से प्यार किया जा सकता है?
2. 'देशभक्ति', 'देशप्रेम' क्या ये सिर्फ़ थोथे शब्द हैं, जिन्हें हमारे बुद्धिजीवी मुँह पर लाते हुए झिझकते हैं। इस कथन में निहित व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।
3 देशप्रेम अततः एक स्मृति क्यो है?

भाषा-अध्ययन

1. पाठ मे आए निम्नलिखित शब्द 'इत' प्रत्यय लगाकर बने है। इनमे से प्रत्यय निकाल कर मूल शब्द लिखिए:
उन्मूलित, उत्पीडित, पल्लवित, अंतर्गुफित, सुरक्षित।
2. निम्नलिखित वाक्यो मे से विशेषण पदबंध और क्रिया पदबध ढूँढ़िए:
(क) अनुभव के धुँधले, टीसते, टिमटिमाते बिंदु से उत्पन्न हो सकती हैं।
(ख) उत्पीड़ित और त्रस्त जातियाँ अपने को सुरक्षित पाती रही है।
(ग) आज के आधुनिक भारतीय धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवियो को भारत के संदर्भ में ईश्वर और पूर्वजो की स्मृति का उल्लेख करना अजीब जान पड़ता होगा।
3. निम्नलिखित वाक्यों में से रायुक्त वाक्य और मिश्र वाक्य बताइए और इनके उपवाक्यो का उल्लेख भी कीजिए:
(क) यह मेरे लिए अपने देश भारत की पहली छवि थी, जो मेरी स्मृति मे टॅगी रह गई है।
(ख) माँ ने जल्दी से मेरे हाथ में कुछ पैसे रखे और मुझसे कहा कि मैं उन्हे नीचे फैक दूँ।
(ग) अतीत मे देश के प्रति यह भावना अन्य देशो मे भी देखी जा सकती थी, जहाँ देश प्रेम का गहरा सबंध संस्कृति और परंपरा की स्मृति से जुड़ा था।

योग्यता-विस्तार

1. 'वंदे मातरम्' गीत के लेखक कौन थे? ज्ञात कीजिए कि भारतीय स्वतत्रता संग्राम में इस गीत की क्या भूमिका थी? इस गीत मे भारतभूमि की किन विशेषताओं को उजागर किया गया है?
2 इस पाठ्‌यपुस्तक के अन्य दो निबंध 'नदी बहती रहे' और 'यह देश एक है' पढ़िए और उनमे से वे अंश छाँटिए, जो इस पाठ के निम्नलिखित अंश की भावभूमि से मेल खाते हों:

   "मनुष्य और पशु के संबंध की बात तो अलग रही उन चीज़ो का परस्पर संबंध भी बहुत गहरा हो जो ऊपर से जीवंत दिखाई देते हैं......पत्थर, नदी, पहाड़, पेड़.....आपस मे किंतु अपने अंतर्संबंधो मे वे एक जीवंत पवित्रता का गौरव, एक तरह की धार्मिक संवेदना ग्रहण कर लेते हैं।"

शब्दार्थ और टिप्पणी

संपृक्त – जुड़ा हुआ

परिदृश्य – चारो ओर का दृश्य, समग्र दृश्य

उच्छ्‌वसित – प्रफुल्लित, विकसित

विस्तीर्ण – फैला हुआ

उन्मादपूर्ण – उन्मत्त, पागलपन से भरा हुआ, सनकी

अंतर्गुंफित – परस्पर अथवा भीतर से जुड़ी हुई

अर्थवत्ता – सार्थकता

हृतस्थल – हृदय स्थल

प्रत्यक्षीकरण – स्वयं अपनी आँखों से देखना

उन्मेष – दीप्ति, जागरण, स्फुरण

सिनागौग – यहूदियों का प्रार्थनागृह, चर्च

मर्मातक – मर्मस्थल को छेदनेवाला

अलबरूनी – अरब देश का एक इतिहासकार

काव्य खंड

हिंदी-काव्य-परंपरा

गत एक हज़ार वर्ष से अपनी विकास-यात्रा की विभिन्न धाराओं से गुजरती हुई हिंदी कविता आश्चर्यजनक रूप से अदलती-बदलती रही है। आरंभ में उसकी भाषा का कोई निश्चित रूप न था। अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी, मैथिली, मगही आदि अनेक क्षेत्रीय और स्थानीय भाषा-बोलियों में कुछ छुट-पुट रचनाएँ हो रही थीं। डिंगल और पिंगल के रूप में क्रमशः दो काव्य-शैलियाँ विकसित हुईं। अपभ्रंश से अपने को मुक्त करते हुए मध्य देश की दो काव्य भाषाओं – अवधी और ब्रज का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का आरंभ होने पर खड़ीबोली ब्रजभाषा का स्थान ग्रहणकर लगभग पिछली एक शताब्दी से प्रमुख काव्य-भाषा बन गई।

आदिकालीन हिंदी-कविता (1400 ई. तक)

हिंदी कविता के आदि रूप को स्पष्ट रूप से पहचान पाना और उसके व्यक्तित्व को अलग-थलग कर देनेवाली विभाजक रेखा खीच पाना असंभव है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'प्राकृताभास हिंदी' की सज्ञा दी है, तो कुछ विद्वानो ने अपभ्रंश को ही हिंदी का प्राचीन रूप स्वीकार किया है, किंतु तत्कालीन बोलचाल की भाषा न होने के कारण आचार्य शुक्ल ने इसे युक्तिसंगत नहीं माना। स्वयं विद्यापति एक ओर तो बोलचाल की मैथिली मे **पदावली** लिख रहे थे और दूसरी ओर परंपरागत अपभ्रंश से प्रभावित प्राकृताभास हिंदी में **कीर्तिलता** और **कीर्तिपताका**। सचाई यह है कि इस समय तक साहित्यिक अपभ्रंश का मोह छोड़कर कवि स्थानीय भाषा-बोलियों में रचनाएँ करने लगे थे। यही कारण है कि आदिकालीन हिंदी-कविता में विविध भाषा-रूप मिलते हैं। एक ओर विद्यापति की पुरानी मैथिली है, तो दूसरी ओर नरपति नाल्ह की पुरानी राजस्थानी, तो तीसरी ओर अमीर खुसरो की पहेलियों और मुकरियों मे प्रयुक्त जनमानस की खड़ीबोली।

स्पष्ट है कि विविध भाषा-बोलियों में बँटे हिंदी-प्रदेश की कोई एक प्रमुख काव्य भाषा विकसित न हो सकी थी।

आदिकालीन हिंदी कविता में भाषागत विविधता के समान ही प्रवृत्तिगत विविधताएँ भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। इस काल में एक ओर जहाँ सिद्धो, नाथों और जैनमुनियो की उपदेशात्मक, समाज सुधारात्मक तथा आध्यात्मिक अंतःसाधना संबंधी रचनाएँ लिखी जा रही थीं, तो वहीं दूसरी ओर राजपूत राज-दरबारों में चारण कवियों द्वारा शौर्य और प्रेम की गाथाएँ गाई जा रही थीं। इन रचनाओं में भाव-धाराएँ कहीं मुक्तको में फूट रही थीं, तो कही प्रबंध-काव्यों में। इस काल की प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं – गोरखनाथ की **गोरखबानी**, शालिभद्रसूरि का **भरतेश्वर बाहुवली रास**, आसगू का **चंदन बाला रास**, विद्यापति की **पदावली**, नरपति नाल्ह का **बीसलदेव रासो** तथा चदबरदाई का **पृथ्वीराज रासो** और जगनिक का **आल्ह खंड**।

सामाजिक रूढ़ियों, पाखंड और अध-विश्वास का विरोध, प्रेम और सौंदर्य-चित्रण, शौर्य गाथाएँ, प्रकृति-प्रेम आदि प्रवृत्तियाँ आदिकालीन हिंदी-कविता की सामान्य विशेषताएँ हैं। इस युग की कविता की अपनी निजी भाषाएँ थीं और थे निजी छंद-प्रयोग। भले ही भाषा में अपेक्षित निखार-परिष्कार न हो, किंतु आदिकालीन हिंदी कविता निश्चित रूप से लोकजीवन के अधिक निकट थी और इसी से हिंदी के भक्ति-काव्य के स्वर्ण युग का द्वार उन्मुक्त हो सका।

भक्तिकालीन कविता (1650 ई. तक)

चौदहवीं शताब्दी से ही भारत की राजनीतिक-धार्मिक परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आरंभ हो गए थे और पंद्रहवीं शताब्दी तक आते-आते राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से भारतीय जीवन और समाज का रूप बहुत-कुछ बदल चला था। शासन की सुदृढ़ स्थापना करने के साथ-साथ मुस्लिम शासकों ने इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार का भी प्रयत्न किया। फलतः हिदूधर्म में भी एक नई चेतना का प्रादुर्भाव हुआ और धार्मिक-सांस्कृतिक आंदोलनों ने गति पकड़ी, जिन पर एक ओर पूर्ववर्ती सिद्धों और नाथों का प्रभाव था, और दूसरी ओर संतों, भक्तों और मुस्लिम प्रेममार्गी फ़कीरों का। हिंदी की ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा और प्रेममार्गी सूफ़ी काव्यधारा इसी प्रकार के धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलनों का परिणाम थीं।

इस काल में ऐसे धार्मिक-सांस्कृतिक भक्ति-आंदोलनों का आरंभ हुआ, जिन्होंने कृष्णभक्ति और रामभक्ति जैसी गौरवमयी काव्य-धाराओं का विकास किया। वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान में सक्रिय महाप्रभु वल्लभाचार्य और रामानंद ने क्रमशः कृष्णभक्त और रामभक्त कवियो को भक्ति-काव्य रचना की प्रेरणा दी।

इस प्रकार पंद्रहवीं शताब्दी धार्मिक-सांस्कृतिक आंदोलनो के ऐसे महाज्वार से गुज़र रही थी, जिसमें धर्म ज्ञान और दर्शन का विषय न रहकर भावावेश और भक्ति-विह्वलता का रूप ले चुका था। यह अलग बात है कि भावावेशमयी इस भक्ति गंगा को इस्लाम के एकेश्वरवाद, वेदांत के अद्वैतवाद, सूफ़ीमत की प्रेममयी दार्शनिकता, वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग तथा रामानंद की रामभक्ति ने प्रभावित किया।

निर्गुण भक्तिमार्ग के कवियों का ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी उपधाराओं में बॉटकर अध्ययन किया जाता है। कबीर, नानक, दादू, रैदास, मलूकदास आदि निर्गुण संत कवियों ने जहाँ एक ओर सांप्रदायिकता, जातिवाद, पाखंड, अंधविश्वास और धार्मिक बाह्याचारों का डटकर विरोध किया, वहाँ विभिन्न सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक मान्यताओ के प्रति भी अनास्था प्रकट की। इन कवियों ने मूर्तिपूजा, पुनर्जन्म, तीर्थस्नान, जप-माला, छापा-तिलक, बहुदेववाद और अवतारवाद की भी आलोचना की तथा निर्गुण निराकार और घट-घट वासी ईश्वर की सत्ता में विश्वास प्रकट करते हुए गुरु-महिमा, साधु-संगति, ध्यान, सदाचार, आंतरिक पवित्रता और मानव-प्रेम पर बल दिया। इन कवियों ने अधिकतर मुक्तकों में – कभी गेय पदों में तो कभी दोहा छंद मे – रचनाएँ कीं।

निर्गुण प्रेमाश्रयी कवियों को सूफ़ी कवि भी कहा जाता है। इन कवियों में प्रायः सभी मुसलमान थे, जिन्होंने भारतीय लोकजीवन में प्रचलित प्रसिद्ध प्रेमाख्यानों के आधार पर अपनी रचनाएॅ कीं और उनके द्वारा एक ओर जहाँ हिंदू-मुसलमानों में पारस्परिक विश्वास जगाने का प्रयत्न किया, वही दूसरी ओर सूफ़ी धर्म-सिद्धांतों का प्रतिपादन और प्रचार भी किया। एक व्यापक मानवतावादी आदर्श को सामने रखकर इन कवियों ने भी ज्ञानाश्रयी कवियों की भाँति धार्मिक बाह्याडंबरो का विरोध किया। कुतुबन, मंझन, जायसी आदि 'प्रेम की पीर' के गायकों ने प्रेम को ही ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग बताया और कट्टरता को छोड़कर धार्मिक सहिष्णुता पर बल दिया।

सगुण भक्तिधारा के कवियों ने कृष्णभक्ति और रामभक्ति का आश्रय लेकर काव्य-रचनाएँ कीं और इसी आधार पर इन कवियों का अध्ययन कृष्णभक्ति काव्यधारा और

रामभक्ति काव्यधारा के रूप में किया जाता है। जहाँ निर्गुणधारा के कवि सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्ष कर रहे थे और समस्त सामाजिक गड़बड़ियों के मूल मे धार्मिक बाह्याचारों को मानते थे, वहाँ सगुण काव्यधारा के कवि इस गड़बड़ी का कारण वर्ण-व्यवस्था में आनेवाली कुरीतियों को मानते थे और इसे सुधारने पर ज़ोर देते थे। कृष्ण-भक्तिधारा में सूरदास, नंददास आदि अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त मीरा, रसखान, रहीम आदि कवियों ने भी उल्लेखनीय काव्य-सृजन किया। रामभक्तिधारा में तुलसीदास का नाम सर्वोपरि है, कृष्ण भक्तिधारा मे जहाँ कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता है वहीं रामभक्ति धारा में राम के लोकरक्षक रूप और मर्यादावाद की।

भक्तिकाल को हिंदी-काव्य का 'स्वर्णकाल' माना जाता है। निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं के कवियों ने लोक-भाषाओं को महत्त्व दिया। कबीर ने सधुक्कड़ी भाषा में, जायसी ने मुख्यतः अवधी में और सूर आदि कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा में रचनाएँ कीं। तुलसी और जायसी जैसे श्रेष्ठ कवियो ने यद्यपि अवधी को अपनाया, फिर भी ब्रज की लोकप्रियता बढ़ चली और आगे चलकर रीतिकालीन कवियों की अभिव्यक्ति के लिए वही प्रमुख भाषा बनी।

रीतिकालीन कविता (1850 ई. तक)

भक्तिकालीन हिंदी कविता में यद्यपि लौकिक जीवन की अवमानना न थी, तो भी उसका मुख्य उद्देश्य ईश्वरोन्मुख भक्ति थी, जो सांसारिक माया-मोह के जाल से मुक्त होकर पाई जा सकती थी। इस कविता में जगत् की अवधारणा माया-जाल के रूप मे की गई, जिससे जीवन के प्रति एक नकारात्मक भाव विकसित होने लगा। कालांतर मे इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप रीतिकालीन कविता का विकास हुआ, जिसमें जीवन के प्रति अनुराग और आकर्षण व्यक्त किया गया। इस कविता में परलोक की चिंता के बदले राधा-कृष्ण के नाम पर लौकिक शृंगार के फुटकर पदों की रचना हुई।

भारतीय इतिहास का यह वह युग है जब मुग़ल साम्राज्य पूरी तरह स्थापित और सुदृढ़ हो चुका था तथा छोटे-छोटे राजा-महाराजाओं और बड़े-बड़े सामंतों तथा ज़मीदारो में भी मुग़लों के समान तड़क-भड़क के साथ दरबार सजाने की प्रवृत्ति बढ चली थी। ये राजा और सामंत वैभव-विलास और आमोद-प्रमोद में लीन रहते थे तथा शृंगारिक काव्य चर्चा इनके अनेक मनोरंजनों में से एक थी। कुछ राजा स्वयं भी कविता रचने में

रुचि रखते थे। स्वयं कविता न लिख पाने वाले राजा भी कवियों और कलाकारों को आश्रय देते थे। अपने आश्रयदाताओं को रिझाने के लिए आश्रित कवि उनकी उदारता, वीरता और गुणग्राह्यता के साथ-साथ उनके पूर्वजों का कीर्तिगान भी करते थे। लोक-जीवन और आध्यात्मिक साधना से हटकर कविता और कवि दरबारो की सजावट का साधन बन गए।

मुग़ल दरबार के प्रभाव के कारण इन दिनों की फ़ारसी की प्रेमपूर्ण कविताएँ भी राजदरबारों मे लोकप्रिय थीं। रीतिकाल के दरबारी कवि को फ़ारसी की इन शृंगारिक रचनाओं का भी मुकाबला करना था, अतएव नायिकाओं के सौंदर्य-चित्रण, नख-शिख वर्णन, शृंगार-चेष्टाओं के मोहक चित्रांकन में ही कवियों ने अपने कवि-कर्म की सार्थकता मान ली थी।

केशव रीतिकाल के प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। उनकी **कवि प्रिया** और **रसिक प्रिया** से ही रीतिकाल का आरंभ माना जाता है। इनके बाद ही चिंतामणि से रीतिग्रंथों की ऐसी अजस्र परंपरा चली कि प्रत्येक कवि ने अपना कवि-कर्म तब तक अधूरा समझा जब तक उसके किसी लक्षण-ग्रंथ की रचना न कर ली हो। इस प्रकार इस युग में लक्षण-ग्रंथों की भरमार हो गई। कवियों में कवि और आचार्य बनने का मोह रहता था। वही व्यक्ति शास्त्री था और वही कवि भी। परिणाम यह हुआ कि छंद-अलंकारों के उदाहरण रचने की विवशता के कारण इस युग के कवियों मे उस स्वच्छंद कल्पना और मौलिक उद्भावना के बहुत कम दर्शन होते हैं, जो भक्तिकालीन कवियों में दिखाई पड़ती है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि इस युग के कवियों में काव्योचित अनुभूति और कल्पनाशीलता अथवा भाषा-क्षमता का अभाव है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके संबंध में ठीक ही लिखा, "रीति-ग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका प्रमुख उद्देश्य कविता करना था न कि काव्यांगों का शास्त्रीय विवेचन करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः शृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरल और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण-ग्रंथों से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।" इन रीतिवादी कवियों में केशवदास, बिहारी, देव, मतिराम, भिखारी दास, पद्माकर आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। वीर रस के ओजस्वी कवि भूषण की गणना भी इन्हीं कवियों में की जाती है।

यद्‌यपि रीतिकाल का अधिकांश साहित्य रीतिबद्‌ध परिपाटी पर रचा गया, किंतु कुछ कवि ऐसे थे जिन्होंने इस परिपाटी की लक्ष्मण रेखा से हटकर अपनी सहज अनुभूतियों और भावनाओ को कविता में रूपायित किया। इनमें घनानंद, बोधा, ठाकुर, आलम आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं। इन कवियों में रूढ़िपालन का निर्वाह न होकर स्वच्छंदता अधिक है। यद्‌यपि शृंगार वर्णन और ललित काव्य-रचना में ये रीतिबद्‌ध कवियों से पीछे नहीं हैं, तथापि इनमें नायिका भेद का वैसा रूढ़ विधान नहीं मिलता। इनके प्रेम और अनुराग के चित्रों में चातुरी के स्थान पर हृदय की सहज सरलता है। स्थूल रूप-चित्रण के साथ-साथ इन्होंने आंतरिक भाव सौंदर्य और मार्मिक अनुभूतियों का भी चित्रण किया।

आधुनिक काव्य-धारा (1850 ई. से . . .)

भारतेंदु युग और नवजागरण काल

1857 के प्रथम स्वतंत्रता-संघर्ष के असफल हो जाने के बावजूद इस संघर्ष ने भारत के लोक जीवन की सोई हुई चेतना और खोई हुई अस्मिता को जगा दिया। क्रांति की चिंगारी ने दमन के बावजूद फैलकर व्यापक जातीय चेतना और जन-जागृति का रूप ले लिया। उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध का सांस्कृतिक पुनर्जागरण और स्फूर्ति तथा राष्ट्रीय चेतना का विकास भारतीय मानस में कहीं अतीत का गौरवबोध बनकर जाग्रत हुआ तो कहीं समाज-सुधार और सामाजिक संगठन के रूप में उन्मुख हुआ। संयोग से इन दिनों भारतीय मनीषा पश्चिम के गतिमान ज्ञान-विज्ञान, चिंतन-चेतना और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के संपर्क में आई और उसके सामने प्रकाश की अनेक रंगीन रश्मियाँ विकीर्ण हो उठीं। प्रेस के आविष्कार और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने नए पाठक समुदाय का निर्माण किया। उधर औद्‌योगीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने से देश की आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव आया। युग की इन बहुमुखी प्रवृत्तियों को जहाँ तत्कालीन नव विकसित गद्‌य-विधाएँ अभिव्यक्ति देने में जुट गईं, वहीं युग की नई आवश्यकताओं के अनुसार हिंदी कविता भी नए-नए विषयों की ओर उन्मुख हुई। स्वयं भारतेंदु ने भी ब्रजभाषा में कविता करने के साथ-साथ खड़ीबोली में काव्य-रचना का कार्य प्रारंभ कर दिया था। समकालीन कवियों ने भी काव्य-रचना के लिए खड़ीबोली को अपनाया। इसके बाद श्रीधर पाठक के समय तक खड़ी बोली में काव्य-रचना का प्रचलन बढ़ गया था। श्रीधर पाठक के **एकांतवासी योगी** की खड़ीबोली का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ माना

जाता है। इस प्रेमकाव्य के अतिरिक्त **कश्मीर सुषमा** और **गुनवंत हेमंत** जैसी प्रकृति की सुंदर कविताएँ भी उन्होंने लिखीं।

द्‌विवेदी युग और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना

यद्‌यपि भारतेंदु युग में खडीबोली में काव्य-रचनाएँ शुरू हो गई थीं किंतु उनका परिष्कार और प्रचलन द्‌विवेदी युग में ही संभव हो पाया। महावीर प्रसाद द्‌विवेदी ने जहाँ एक ओर हिंदी (खड़ीबोली) गद्‌य को व्याकरण-सम्मत और मानक रूप प्रदान किया वहीं खड़ीबोली को काव्य भाषा के रूप मे विकसित करने का भी सराहनीय प्रयत्न किया। उन्होंने तत्कालीन कवियों को खड़ीबोली में काव्य-रचनाएँ करने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। द्‌विवेदी युग में ही रामनरेश त्रिपाठी (**पथिक**, **मिलन**, **स्वप्न**) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (**प्रिय प्रवास**, **वैदेही बनवास**, **चुभते चौपदे**) और मैथिलीशरण गुप्त (**भारत भारती**, **यशोधरा**, **साकेत**, **जयद्रथवध**, **पंचवटी**) ने खड़ीबोली मे श्रेष्ठ काव्य-रचनाएँ कीं।

इस युग की रचनाओं में अतीत का गौरव-गान, सास्कृतिक नवचेतना, राष्ट्र-प्रेम और प्रकृति-प्रेम की प्रवृत्तियाँ विशेषरूप से मुखरित हुई हैं। इस युग मे गांधीवादी विचारधारा का भी कवियों पर प्रभाव पड रहा था। अंग्रेज़ी दासता के विरुद्‌ध स्वतंत्रता संग्राम और देशभक्ति की भावना प्रबल हो उठी थी। इसके फलस्वरूप हिंदी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा का उदय हुआ। इस धारा के उल्लेखनीय कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, सोहन लाल द्‌विवेदी आदि की गणना की जाती है।

छायावाद

द्‌विवेदी युग में यद्‌यपि राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से प्रभावित काव्यधारा का विकास हुआ कितु उसकी अभिव्यक्ति इतिवृत्तात्मक, स्थूल और अभिधात्मक ही बनी रही। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप 1920 ई. के आस-पास छायावादी काव्यधारा का प्रादुर्भाव हुआ। इसके प्रमुख कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा विशेष रूप से प्रसिद्‌ध हैं। इनके अतिरिक्त रामकुमार वर्मा, नरेंद्र शर्मा, भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि भी इसी धारा के कवि हैं। इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ थीं : सूक्ष्म सौंदर्य चेतना, कल्पना की अतिशयता,

प्रकृति का मानवीकरण, नारी महिमा, मानवतावाद, राष्ट्रवाद, राष्ट्रप्रेम, लाक्षणिकता, व्यंजनात्मकता, उपमानों के नवीन प्रयोग, नाद सौंदर्य, मानवीकरण और विशेषण विपर्यय जैसे नवीन अलंकारों का प्रयोग और नया छंद विधान।

इस युग की प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं : प्रसाद की **कामायनी** और **आँसू**, निराला की **गीतिका, अनामिका, परिमल (राम की शक्तिपूजा और तुलसीदास)**, महादेवी की **यामा** और **दीपशिखा** और पंत की **पल्लव, गुंजन, चिदंबरा**।

इसी अवधि में अपनी प्रगीत धर्मी रचनाएँ लेकर उपस्थित होनेवालों में रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंशराय 'बच्चन', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', और गोपाल सिंह 'नेपाली' आदि उल्लेखनीय हैं। गीतों की यह परंपरा आगे चलकर नीरज, वीरेंद्र मिश्र, रामावतार त्यागी, शंभूनाथ सिंह, रामानंद दोषी, बलबीर सिंह 'रंग' , रमानाथ अवस्थी आदि की रचनाओं में और भी विकसित हुई।

प्रगतिवाद प्रयोगवाद

छायावादी भावुकता, स्वप्नशीलता और अतिशय काल्पनिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप यथार्थवाद का आग्रह लिए 1936 के आस-पास नई सामाजिक चेतना से उद्‌बुद्‌ध एक नई कविता धारा का उदय हुआ, जो अपने प्रगतिशील विचारों के कारण प्रगतिवादी काव्यधारा कहलाई। इस कविता में पहली बार शोषित, पीड़ित, दीन-हीन, उपेक्षित-वचित और दलित-पतित ने स्थान ग्रहण किया। प्रगतिशील कवियों ने जहाँ एक ओर दीन-दरिद्र किसान और शोषित मज़दूर को अपनी बौद्‌धिक करुणा और सहानुभूति का अर्ध्य चढ़ाया, वहाँ शोषक ज़मीदार और साहूकार वर्ग के प्रति गहरा आक्रोश भी प्रकट किया। इन रचनाओं में मार्क्सवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है। इस कविताधारा ने एक नए सामाजिक-आर्थिक भाव-बोध, नूतन संवेदना और मानवतावाद को प्रतिष्ठापित किया। छायावाद के अग्रणी कवि सुमित्रानंदन पंत की **युगवाणी** और **ग्राम्या** में इस प्रवृत्ति की पहली सचेतन अभिव्यक्ति हुई। 'निराला' की **वह तोड़ती पत्थर** और **कुकुरमुत्ता** ने भी इस धारा को नई शक्ति प्रदान की। फिर तो नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, गजानन माधव 'मुक्तिबोध' और रामविलास शर्मा ने प्रगतिवादी भावधारा को उल्लेखनीय बल प्रदान किया।

1943 के आस-पास रूप और कला-संबंधी नए प्रयोगों के नाम पर हिंदी में एक नया कविता-आंदोलन आरंभ हुआ, जिसे उसकी प्रयोग-धर्मिता के कारण, 'प्रयोगवाद' कहा

गया। इसी वर्ष 'अज्ञेय' के संपादन में प्रकाशित **तार-सप्तक** को इस धारा का आधार ग्रंथ माना जाता है और अज्ञेय को इसका प्रवर्तक। इन प्रयोगधर्मी कवियों ने एक ओर जहाँ छायावादी कविता की अतिशय भावुकता, स्वप्नशीलता और अतिरंजना का विरोध किया, वहीं इन्होने प्रगतिशील कविताधारा की कलागत उदासीनता और अनगढ़ भाषा-शिल्प की भी आलोचना की। सचाई यह है कि प्रयोगवादी कविता चरम व्यक्तिवाद, कलावाद और रूपवाद की कविता है। प्रयोगवादी कविता की मुख्य विषयवस्तु आधुनिक मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिक कुंठाएँ थीं। गहरी अंतर्मुखता के कारण यह कविता अपनी संप्रेषणीयता में जटिल और दुरूह बन गई। 'अज्ञेय' के अतिरिक्त गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, नेमिचंद जैन, भारतभूषण अग्रवाल, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे आदि इस धारा के प्रतिनिधि कवि हैं।

स्वाधीनता के बाद देश की राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियो में भारी परिवर्तन हुए। एक ओर स्वाधीनता पूर्व देखे गए स्वप्नो और कल्पनाओं को जनता ने अपने अनुरूप साकार न पाकर निराशा और विक्षोभ प्रकट किया, तो दूसरी ओर सांप्रदायिकता के हिंसात्मक खून-खराबे ने इन सपनों के तारों को और भी छिन्न-भिन्न कर दिया। परिणामस्वरूप प्रयोगवादी कविताधारा में भी नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ और स्वयं प्रयोगवादी कवियों ने नई प्रवृत्तियों से युक्त कविता को 'नई कविता' कहा। 'नई कविता' प्रयोगवादी कविता का अगला चरण है। दूसरा सप्तक (1951 ई.) और तीसरा सप्तक (1959 ई.) में नई कविता के पर्याप्त उदाहरण मिलेंगे। इस कविताधारा में पहले के प्रयोगवादी कवियों के अतिरिक्त शमशेर बहादुर सिंह, भवानीप्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन, श्रीकांत वर्मा आदि कवियो ने उल्लेखनीय कार्य किया।

आगे चलकर नई कविता में दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं – सामाजिक चेतना से संपन्न जनोन्मुखी और व्यक्ति-चेतना से संपन्न अंतर्मुखी प्रवृत्ति। मुक्तिबोध और नागार्जुन मे दोनों प्रवृत्तियो का सामंजस्य मिलता है। रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, धूमिल और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में जहाँ जनोन्मुखी सामाजिक चेतना सुंदर रूप में प्रस्फुटित हुई है वहाँ नरेश मेहता, कुँवर नारायण, धर्मवीर भारती और श्रीकांत वर्मा में आत्मपरक अंतर्मुखता की प्रधानता है। निश्चित रूप से इन कवियों ने जन-जीवन की धडकनों और आधुनिक भावबोध को वाणी देने और राष्ट्र की आकांक्षाओं को शक्तिशाली ढंग से व्यक्त करने का सराहनीय प्रयास किया है।

इस कविता में अनुभव की प्रामाणिकता, आधुनिक बोध (वैज्ञानिक दृष्टि, बौद्धिकता, स्वविवेक की प्रधानता), सामाजिक विषमता, विसंगति, विडंबना, क्षण-बोध, लघुता की महत्ता, मुक्त छंद का प्रयोग, प्रतीक और बिंबों की प्रधानता, नए उपमानों का प्रयोग और जनभाषा का अधिकाधिक व्यवहार आदि विशेषताएँ दिखलाई पड़ती हैं।

इस प्रकार हिंदी कविता की प्रगतिगामी विकासशील यात्रा नूतन भाषाशैली एवं अभिव्यंजना के नए-नए प्रयोगों की संभावनाओं के साथ आगे भी जारी है।

रैदास



संत रैदास का जन्म अनुमानतः सन 1388 में वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ। मध्यकालीन संतों में रैदास का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उनका ज्ञान साधना और अनुभव पर आधारित है। उन्होंने भक्ति के लिए वैराग्य को अनिवार्य माना है। उनका विचार है कि परम तत्त्व सत्य है, जो अनिर्वचनीय और व्याख्या से परे है – "जस हरि कहिए तह हरि नाहीं। है उस जस कछु तैसा।" यह परम तत्त्व जड और चेतन सभी में व्याप्त है।

संत रैदास अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा थे। कबीर ने 'संतनि में रविदास संत' कहकर उनका महत्त्व स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त नाभादास, प्रियादास और मीराबाई ने भी रैदास का सम्मानपूर्वक स्मरण किया है।

ऐसा माना जाता है कि रैदास सन 1518 में परलोक गमन कर गए। रैदास की रचनाएँ और पद **गुरु ग्रंथ साहब** में संकलित हैं। उनकी रचनाओं का एक पृथक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। रैदास के पदों में अरबी, फारसी, पजाबी, गुजराती, ब्रज आदि विभिन्न भाषाओ के शब्द मिलते हैं। इन पदों में अलंकारों, रूपकों और दृष्टांतों के प्रयोग से ज्ञान और भक्ति का सहज उद्घाटन हुआ है।

संकलित पद में रैदास ने निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपना अनन्य भाव व्यक्त किया है। वे मानते हैं कि ऐसे प्रियतम को अपनाने के बाद किसी और देवी-देवता से कोई संबंध नहीं रह जाता। उसी का एकमात्र भरोसा है।



नानक

गुरु नानक का जन्म सन 1469 में तलवंडी (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ। वे सिखों के आदि गुरु हैं। उन्होंने बचपन में बहुत जल्दी ही स्कूल छोड़ दिया और अपना अधिकांश समय मनन, स्वाध्याय, ध्यान और सत्संग में व्यतीत किया। उनके पद इस बात के प्रमाण हैं। उनके व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि उन्होंने विभिन्न संप्रदायो के साधुओं, सन्यासियो और फ़कीरों का सत्संग करके अपने ज्ञान और भक्ति भाव को व्यापक और उदार बनाया।

गुरु नानक का व्यक्तित्व असाधारण था। उनमें पैगंबर, दार्शनिक, राजयोगी, गृहस्थ, त्यागी, धर्म सुधारक, समाज सुधारक, कवि, संगीतज्ञ, देशभक्त आदि के गुण भरपूर मात्रा में मिलते हैं। उनकी कथनी और करनी में अद्भुत सामंजस्य है। उनकी भक्ति मे वैराग्य का सम्मिश्रण है। उनके पदों में नारी की महत्ता का चित्रण मिलता है। जाति और धर्म से ऊपर उठकर उन्होने भक्ति भाव का प्रसार किया। गुरु नानक ने हिंदुओं और मुसलमानों दोनो की प्रचलित रूढ़ियों एवं कुसंस्कारों की कटु आलोचना की है और उन्हें सच्चे हिंदू अथवा सच्चे मुसलमान बनने की विधि बताई है।

गुरु नानक सन 1538 के आस-पास गोलोकवासी हुए। गुरु नानक की वाणी का संग्रह ***गुरु ग्रंथ साहब*** *मे मिलता है। 'गुरु ग्रंथ साहब' सिखों का पवित्र धर्म ग्रंथ हैं। वाणी में फारसी, मुल्तानी, पंजाबी, सिंधी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्दों का प्रयोग मिलता है। उन्होने विभिन्न अलंकारों, रूपकों और दृष्टांतों के माध्यम से अपने भावो और विचारों को अभिव्यंजित किया।*

प्रस्तुत पद में नानक का विश्वास है कि परम ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वनों में भटकने की आवश्यकता नहीं है। वह इस प्रकार सब जगह समाया हुआ है, जैसे पुष्प के भीतर गंध और शीशे के भीतर परछाई समाई रहती है। अतः अपने आपको पहचानना ही उसे पहचानना है।



दादू दयाल

संत कवि दादू दयाल का जन्म अनुमानतः सन 1544 में अहमदाबाद (गुजरात) में हुआ। 30 वर्ष की अवस्था में वे साँभर (राजस्थान) आ गए थे। यहाँ उन्होंने 'ब्रह्म संप्रदाय' की स्थापना की। आगे चलकर यह संप्रदाय 'परब्रह्म सप्रदाय' कहलाया और अंत मे यही 'दादू पंथ' के नाम से प्रचलित हुआ। दादू ने राजस्थान के साथ-साथ दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और गुजरात का भ्रमण करते समय अनेक धर्म-संप्रदायों के श्रेयस्कर तत्त्वों को ग्रहण किया।

दादू ने भी अन्य संतो की भाँति निजी अनुभव को भक्ति और ज्ञान का केंद्र माना। उनके भावो और विचारो में अहिंसा, योगसाधना, प्रेमसाधना, परोपकार, सर्वधर्म-समभाव के तत्त्व मिलते हैं। उन्होंने जाति, धर्म, संस्कृति, सप्रदाय के समन्वय का उपदेश दिया। उनकी वाणी का एक-एक शब्द पाठक के हृदय पर सीधे प्रभाव डालता है। इसलिए सत कवियों मे दादूदयाल का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है।

दादू दयाल सन 1603 के आस-पास अपने भौतिक स्वरूप से मुक्त हुए। दादूदयाल की प्रसिद्ध कृति **अनभैवाणी** है। इसमें उनके दोहे और पद संगृहीत हैं। उनकी दूसरी कृति 'कायाबेलि' भी प्रकाशित हुई। दादू की भाषा मे अरबी, फ़ारसी, ब्रज, पंजाबी, गुजराती, सिंधी, राजस्थानी, खड़ीबोली के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। रूपकों और दृष्टांतों के प्रयोग से उनकी भाषा मे सजीवता आ गई है।

प्रस्तुत पद में ब्रह्म से वियुक्त प्रतीक्षारत विरहिणी आत्मा का चित्रण हुआ है। ब्रह्म रूपी प्रिय के दर्शन की अभिलाषा में समय बीत ही नहीं रहा और व्याकुलता बढ़ती जा रही है। इतना होने पर भी उसके प्राण नहीं निकलते।

संत वाणी

(क)

जो तुम तोरौ राम मैं नहि तोरूँ। तुम सों तोरि कवन सो जोरूँ।।
तीरथ बरत न करूँ अँदेसा। तुम्हरे चरन कमल क भरोसा।।
जहँ-जहँ जाऊँ तुम्हरी पूजा। तुम सा देव और नहिं दूजा।।
मैं अपनो मन हरि सों जोरयो। हरि सों जोरि सबन से तोरयों।।
सब ही पहर तुम्हारी आसा। मन क्रम बचन कहै रैदासा।।

— रैदास

(ख)

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोहि संग समाई।।
पुहुप मध्य ज्यौं बास बसत है मुकुर मॉहि जस छाँई।
तैसै ही रहि बसै निरंतर घट ही खोजो भाई।।
बाहर भीतर एकै जानौ यह गुरु ज्ञान बताई।
भन 'नानक' बिन आपा चीन्हे मिटे न भ्रम की काई।।

— नानक

(ग)

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर।।
चारि पहर चारौं जुग बीते, रैनि गँवाई भोर।।
अवधि गई अजहूँ नहिं आए, कतहुँ रहे चित चोर।।
कबहूँ नैन निरख नहि देखे, मारग चितवत तोर।।
दादू ऐसे आतुर बिरहणि, जैसे चंद चकोर।।

— दादू दयाल

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) पद : जो तुम तोरौ राम मैं नहिं तोरूँ

मौखिक

1. रैदास राम के द्वारा सबंध तोड़ना चाहने पर भी उनसे अपना संबंध क्यो नहीं तोड़ना चाहते?
   (क) उनको आशंका है कि एक बार संबंध टूटने पर दुबारा नही जुड पाएगा।
   (ख) उनका अन्य से संबध जोड़ने का अनुभव कड़वा रहा है।
   (ग) वे राम से जुड़े संबंधो को फलदायी मानते हैं।
   (घ) उन्हें राम जैसा अन्य कोई देवता नज़र नही आता।
2. रैदास तीर्थ-व्रत आदि की चिंता क्यो नहीं करते?

लिखित

1 प्रस्तुत पद मे भक्ति के लिए आवश्यक किन-किन भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है?
2. 'यदि मैं तुम से नाता तोड़ लूँ तो अन्य किससे जोड़ूँ?' – रैदास ऐसा क्यों कहते है?

योग्यता-विस्तार

1 तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियो से उक्त पद की तुलना कीजिए :

'एक भरोसो, एक बल, एक आस-बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास।'

तथा

भरोसों जाहि दूसरो सो करौ।
मोकौं तो राम नाम कल्पतरु, कलि कल्यान फरौ।

(ख) पद : काहे रे बन खोजन जाई।

मौखिक

1. प्रभु हमारे भीतर ही विद्‌यमान है, इस कथन को स्पष्ट करने के लिए कवि ने कौन-कौन-सी उपमाएँ दी हैं?
2. भ्रम की काई को हटाने का कवि ने क्या उपाय बताया है?

लिखित

1 प्रभु के निर्लिप्त होने का क्या आशय है?
2 नानक ने वन मे प्रभु की खोज को व्यर्थ क्यों बताया है?

योग्यता-विस्तार

1 तुलना कीजिए.

कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूँढ़ै बनमॉहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।।

2. गुरु नानक के कुछ और पद 'गुरु ग्रंथ साहब' से खोजकर पढिए और उन्हे अपनी प्रार्थना-सभा मे पढ़कर सुनाइए।

(ग) पद : अजहुँ न निकसै प्राण कठोर

मौखिक

1. दादू और आगे जीने की इच्छा क्यों नहीं रखते?
2. कवि का चित-चोर कौन है?

लिखित

1. 'दादू ऐसे आतुर बिरहणि, जैसे चंद चकोर' के भाव एव शिल्प सौंदर्य को स्पष्ट कीजिए।
2. विरहिणी आत्मा की आकुलता का वर्णन अपने शब्दो मे कीजिए।

योग्यता-विस्तार

1. तुलना कीजिए:

    दरस बिन दूखण म्हारा नैन

    – मीरा

    आठ पहर को दाझणो, मो पै सह्यो न जाय

    – कबीर

2. भक्ति गीतों का एक संग्रह तैयार कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

(क) जो तुम तोरौ राम मैं नहि तोरूँ

जो	–	यदि
तोरों	–	तोड़ना, संबंध-विच्छेद करना
कवन सों	–	किससे
तीरथ बरत	–	तीर्थ, व्रत आदि, कर्मकाण्ड
अँदेसा	–	संदेह
जोरयो	–	जोड़ना
सबन	–	सभी से, अन्य देवी-देवताओं से
सब ही पहर	–	सभी पहर, हर क्षण

(ख) काहे रे बन खोजन जाई

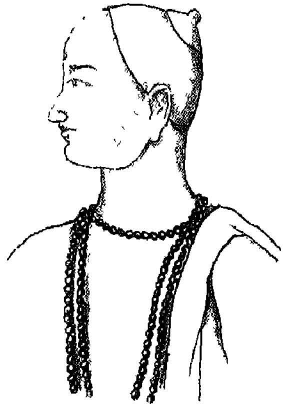
काहे रे	–	किसलिए, व्यर्थ ही
सर्व निवासी	–	सर्वत्र निवास करने वाला
अलेपा	–	निर्लिप्त
तोहि	–	जीव के
संग समाई	–	अंदर समाया हुआ
पुहुप	–	फूल
बास	–	सुगंध
मुकुर	–	दर्पण
जस	–	जैसे
छाँइ	–	परछाईं
घट ही	–	जीव के अंदर ही
भीतर	–	अंतर्मन मे
एकै जानौ	–	एक तत्त्व को ही पहचानो

भन	–	कहना
आपा	–	स्वयं को
चीन्हे	–	पहचानना

(ग) अजहुँ न निकसै प्राण कठोर

अजहुँ	–	अब भी
निकसै	–	निकलना
प्रीतम	–	प्रिय, ब्रह्म
मोर	–	मेरा
रैनि	–	रात
गँवाइ	–	व्यर्थ ही बीत गई
अवधि	–	समय
कतहुँ	–	किसी अन्य जगह
चितचोर	–	मन को हर लेने वाले
मारग	–	मार्ग
चितवत	–	देखना
तोर	–	तेरा, प्रियतम ब्रह्म का
आतुर	–	व्याकुल
बिरहणि	–	विरहिणी, जीवात्मा

तुलसीदास



तुलसीदास का जन्म बाँदा ज़िला (उत्तर प्रदेश) के राजापुर गाँव में सन 1532 में हुआ था। कुछ विद्वान उनका जन्म-स्थान सोरों भी मानते है।

तुलसी का बचपन घोर कष्ट में बीता। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही माता-पिता से उनका बिछोह हो गया और वे भिक्षा माँगकर उदरपूर्ति करते रहे। गुरु नरहरि दास की कृपा से उन्हे राम भक्ति का मार्ग मिला। रत्नावली से उनका विवाह होना और उसकी बातों से प्रभावित होकर गृहत्याग करना प्रसिद्ध है, किंतु इसके लिए पर्याप्त प्रमाण नही है। विरक्त होने के बाद वे काशी, चित्रकूट, अयोध्या आदि अनेक तीर्थो में भ्रमण करते रहे। सन 1574 मे अयोध्या में उन्होने **रामचरितमानस** *की रचना आरंभ की किंतु उसका कुछ अंश उन्होने काशी में भी लिखा। बाद में वे काशी में ही रहने लगे थे और यहीं सन 1623 में उनका देहावसान भी हुआ।*

तुलसीदास मानवता के कवि हैं। उनका भाव क्षेत्र कबीर, जायसी और सूर की अपेक्षा अधिक व्यापक है। मानव-प्रकृति और जीवन-जगत के संबंध में सूक्ष्म अंतर्दृष्टि और विस्तृत गहन अनुभव के कारण ही वे **रामचरितमानस** *में जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन कर सके। इसमे उनके हृदय की विशालता, भाव-प्रसार की शक्ति और मर्मस्पर्शी स्थलों की पहचान पूरे उत्कर्ष के साथ व्यक्त हुई है।*

रामकथा के जिन प्रसगों का विस्तार **मानस** *में संभव न हो सका, उन्हे तुलसी ने* **कवितावली** *और* **गीतावली** *में स्थान दिया है।* **विनय पत्रिका** *मे विनय और आत्म निवेदन के पद हैं। तुलसीदास की लगभग बारह कृतियाँ मानी जाती हैं, किंतु उपर्युक्त कृतियाँ ही उनकी ख्याति की विशेष आधार हैं।*

तुलसी की रचनाओ में अनेक काव्य शैलियाँ मिलती हैं। **रामचरितमानस** *का मुख्य छंद चौपाई है और बीच-बीच में दोहा, सोरठा, हरिगीतिका तथा अन्य छंद आते हैं। विनय पत्रिका की रचना गेय पदो मे हुई है। कवितावली कवित्त-सवैया छद में*

रचित उत्कृष्ट रचना है। दोहावली में स्फुट दोहो का संकलन है। उनकी रचनाओं में प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यो का उत्कृष्ट रूप मिलता है। **रामचरितमानस** हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। ब्रज और अवधी दोनों ही भाषाओं पर तुलसी का असाधारण अधिकार है। मानस के कांडों के प्रारंभ मे उन्होंने संस्कृत भाषा का अधिकारपूर्ण प्रयोग किया है।

तुलसीदास वस्तुतः ऐसे कवि हैं, जिन पर हिंदी ही नहीं समस्त भारतीय साहित्य को गर्व है।

इस पाठ में तुलसीदास कृत **विनय पत्रिका** से दो पद लिए गए है। प्रथम पद मे तुलसी ने श्रीराम की अतुलनीय उदारता का वर्णन किया है। श्रीराम की उदारता अद्वितीय इसलिए है क्योंकि वह बदले मे कुछ नहीं चाहती और वह साधारण से साधारण भक्त को भी सहज रूप में प्राप्त हो जाती है। यदि ऐसे उदार दाता से कुछ मॉगने के स्थान पर उनका स्मरण किया जाए, तब सभी सुख स्वयं ही सुलभ हो जाएँगे।

द्वितीय पद में कवि समस्त सांसारिक सुखों को व्यर्थ स्वीकार कर प्रत्येक दशा मे सतोषी बने रहने की कामना करता है। उसकी आकांक्षा है कि वह किसी से कुछ न मॉगे। निरतर परोपकार में व्यस्त रहे, उसकी कथनी-करनी मे अंतर न हो, कठोर वचन सुनकर उसे क्रोध न आए और सुख-दुःख से विचलित न होकर उसे स्थायी रूप मे राम की भक्ति प्राप्त हो।

विनय

(क)

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवे दीन पर रामसरिस कोउ नाहीं।।
जो गति जोग बिराग जतने करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी।।
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं।।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो।।1।।

(ख)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो।।
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगतमान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो।।
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरिभक्ति लहौंगो।।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) : ऐसो को उदार जग माही

मौखिक

1 योगी और वैरागी साधना द्वारा क्या पाना चाहते हैं?
2 'न बहुत जिय जानी' कथन से राम के चरित्र की कौन-सी विशेषता उजागर होती है?
 (क) उदारता
 (ख) निरभिमानता
 (ग) असगता
 (घ) दानशीलता
3. रावण ने शिव की तपस्या करके कौन-सी सपत्ति अर्जित की थी?
4. कवि की दृष्टि मे जीवन् के समस्त सुखों का आधार क्या है?
 (क) शास्त्रों का ज्ञान
 (ख) राम की भक्ति
 (ग) निष्काम कर्म
 (घ) वैराग्य की भावना

लिखित

1. कवि ने राम की उदारता को अतुलनीय क्यों बताया है?
2. विभीषण को लका का राज्य सौपते हुए राम को संकोच क्यों हो रहा था?

(ख) : कबहुँक हौं यहि रहनि रहौगो

मौखिक

1. तुलसी मन, कर्म और वचन से किस नियम का निर्वाह करना चाहते हैं?
2. कठोर वचनो की आग क्या होती है?
3. शरीर से उत्पन्न चिताएँ कौन-कौन सी हैं? कुछ उदाहरण दीजिए।

लिखित

1 कवि किस प्रकार का जीवन जीने की इच्छा प्रकट करता है?
2 सब स्थितियों मे संतुष्ट रहने की कवि की इच्छा से आप कहाँ तक सहमत है?
3 'विगतमान', 'समसीतल मन' और 'दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो' का आशय स्पष्ट कीजिए।
4. कवि के अनुसार अविचल हरिभक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है?

योग्यता-विस्तार

1. तुलसी की 'विनय पत्रिका' से कुछ अन्य पदो का संकलन कीजिए और उनका लय सहित वाचन कर अभ्यास कीजिए।
2 जटायु और शबरी से संबंधित अंतर्कथाओ की जानकारी प्राप्त कीजिए।
3. 'हर परिस्थिति में संतुष्ट रहनेवाले व्यक्ति की प्रगति रुक जाती है।' इस विषय पर कक्षा मे एक परिचर्चा का आयोजन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

(क) : ऐसो को उदार जग माहीं

को	–	कौन
द्रवे	–	द्रवित, करुणा करना
सरिस	–	समान
गति	–	लक्ष्य
जोग	–	योग साधना
बिराग	–	वैराग्य
गीध	--	गिद्ध विशेष (जटायु)
सबरी	–	शबरी, रामायण में चित्रित एक राम-भक्त चरित्र
अरपि	–	अर्पित कर
सिव पहुँ	–	शिव से
सकुच	–	रांकोच
जो	–	यदि
चाहसि	–	चाहना
पूरन	–	पूर्ण

(ख) : कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो

कबहुँक	–	कब तक
हौं	–	मैं
यहि	–	इसी प्रकार
रहनि	–	रहन-सहन, जीवनी
रहौंगो	–	रहूँगा
गहौंगो	–	ग्रहण करूँगा
जथालाभ	–	जो कुछ भी प्राप्त है

चहौंगो	–	इच्छा करूँगा
परहित-निरत	–	परोपकार में संलग्न
नेम	–	नियम
निबहौगो	–	निर्वाह करूँगा
परुष	–	कठोर
दुसह	–	कठिन
स्रवन	–	कानो से
तेहि	–	ऐसी
पावक	–	अग्नि, जलन
विगत	–	समाप्त
मान	–	सम्मान
समसीतल मन	–	समान रूप से संतोषी मन
पर गुन	–	दूसरों के गुण
कहौंगो	–	कहना
परिहरि	–	त्यागकर
देह-जनित	–	शरीर से उत्पन्न, शरीर संबंधी
सुख-दुख समबुद्धि सहौंगो	–	सुख्र-दुख को समान समझकर सहन करूँगा
यहि पथ	–	इसी मार्ग पर (रामभक्ति के मार्ग पर)
रहि	–	रहकर
लहौंगो	–	प्राप्त करना

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'



सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर ज़िले के महिषादल राज्य में सन 1899 में हुआ। पिता पंडित रामसहाय त्रिपाठी महिषादल राज्य में सामान्य कर्मचारी थे। चौदह वर्ष की आयु में उनका विवाह मनोहरा देवी से हुआ, किंतु उनका पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं रहा। सन 1918 में उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई और उसके बाद पिता, चाचा और चचेरे भाई एक-एक-कर चल बसे। अंत में प्रिय पुत्री सरोज की मृत्यु ने तो उनके हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। इस प्रकार निराला जीवन-भर क्रूर परिस्थितियों से संघर्ष करते रहे। निराला का निधन सन 1961 मे हुआ।

निराला छायावादी काव्य-युग के प्रमुख स्तंभ माने जाते है और उनमे छायावाद की समस्त काव्य-प्रवृत्तियो का विकास देखा-दिखाया जा सकता है, किंतु उनको 'निराला' बनाने वाला है – उनका क्रांतिकारी, प्रगतिशील, विद्रोही और बेबाक व्यक्तित्व। शोषक वर्ग के प्रति उनका विद्रोह और आक्रोश जहॉ सर्वत्र दिखाई पड़ता है, वहाँ उपेक्षित, वंचित और पीडित-शोषित के प्रति उनकी संवेदना और सहानुभूति शत-शत धाराओं में प्रवाहमान हुई है। वे **जागो फिर एक बार, महाराज शिवाजी का पत्र, झींगुर डटकर बोला, महँगू महँगा रहा** आदि कविताओं में शोषकों के विरुद्ध शोषितों के संघर्ष का आह्वान करते हैं, तो **विधवा, भिक्षुक** और **वह तोड़ती पत्थर** जैसी कविताओं में उनकी करुणा शोषित-पीड़ित वर्ग की वाणी बन गई है।

निराला का यह विद्रोही रूप भाव और विषयवस्तु के अलावा शिल्प के स्तर पर भी व्यक्त हुआ है। उन्होंने परंपरा से चले आए छंदों के बंधनों को तोड़कर मुक्त छंद की घोषणा की। इस प्रकार निराला ने वीरत्व-व्यंजक स्वच्छंदतावादी भाव-बोध को व्यक्त किया है। उन्होंने साहित्य में बंधनों का विरोध किया, तो जीवन में सामंती रूढ़ियों और साम्राज्यवादी वृत्तियों का डटकर सामना किया।

निराला की काव्य-भाषा में संधि-समास-युक्त विविध जाति तथा ध्वनि वाले शब्दों का आधिक्य है। उनमें सगीत का स्वर भाषा के प्रवाह को और अधिक गति देता है तथा जागरूक शब्द-विन्यास उनकी भाषा की विशेषता है।

***अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, नये पत्ते, बेला, अर्चना, आराधना** तथा **गीतगुंज** उनकी अमर काव्य-कृतियाँ हैं। काव्य के अतिरिक्त गद्य साहित्य को संपन्न बनाने में भी निराला ने योगदान किया है। निराला आधुनिक हिंदी के क्रांतिकारी और प्रयोगधर्मी कवि हैं।*

प्रस्तुत कविता राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के दिनो मे अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध भारतीय जनता को जगाने के लिए लिखी गई थी।

कविता में गुरु गोविंदसिंह ने गिनती के भारतीय सिख वीरों को मुगलो की भारी सेना के सम्मुख युद्ध के लिए ललकारा है। उन्हें उनके अद्भुत शौर्य और अपने स्वत्व और अधिकार की रक्षा के लिए प्राणों तक का बलिदान करने वाली उनकी गौरवमयी परंपरा का स्मरण दिलाया है। उन्हें पूर्ण स्वाधीन, महान और ब्रह्म रूप में संबोधित करते हुए कायरता का त्याग करने की प्रेरणा दी है।

जागो फिर एक बार

जागो फिर एक बार।
समर में अमर कर प्राण,
गान गाए महासिंधु – से,
सिंधु–नद तीरवासी !
सैंधव तुरंगों पर
चतुरंग – चमू – संग
"सवा-सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोविंदसिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।"
किसी ने सुनाया यह
वीर-जनमोहन, अति
दुर्जय संग्राम-राग,
फाग था खेला रण
बारहों महीनो में।
शेरों की माँद में,
आया है आज स्यार —
जागो फिर एक बार।

सत् श्री अकाल,
भाल – अनल धक-धक कर जला,

भस्म हो गया था काल,
तीनो गुण ताप त्रय,
अभय हो गए थे तुम,
मृत्युंजय व्योमकेश के समान,
अमृत – संतान ! तीव्र
भेदकर सप्तावरण – मरण-लोक,
शोकहारी ! पहुँचे थे वहाँ,
जहाँ आसन है सहस्त्रार —
जागो फिर एक बार।

सिहीं की गोद से छीनता है शिशु कौन?
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण?
रे अजान,
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष —
दुर्बल वह —
छिनती संतान जब,
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।
किंतु क्या?
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नही,
गीता है, गीता है,
स्मरण करो बार बार —
जागो फिर एक बार।

पशु नहीं, वीर तुम,
समर-शूर, क्रूर नही,
कालचक्र मे हो दबे,

आज तुम राजकुँअर,
समर सरताज।
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन-बंध छंद ज्यों,
डूबे आनंद में सच्चिदानंद-रूप।
महा-मंत्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओं में फूँका हुआ,
"तुम हो महान
तुम सदा हो महान,"
है नश्वर ये दीनभाव
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम पदरज भर भी है नहीं,
पूरा यह विश्वभार"
जागो फिर एक बार।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

मौखिक

1. 'सिंधु नद तीर वासी' किसे कहा गया है?
2. 'शेरों की माँद में, आया है आज स्यार' पंक्ति मे शेर और सियार से कवि का संकेत किस ओर है?
3. कविता की किन पंक्तियो मे सिख वीरो के अतीतकालीन बलिदान का चित्रण है?
4. प्रस्तुत कविता में कौन-से भाव की प्रधानता है :
   (क) ओज और उत्साह
   (ख) भय
   (ग) देश-प्रेम
   (घ) आतक
5. बलिदानी योद्धाओं की तुलना महा-सिंधु से क्यों की है?

लिखित

1. 'सवा-सवा लाख पर, एक को चढ़ाऊँगा' कथन के पीछे गुरु गोविंदसिंह का कौन-सा मनोभाव कार्य कर रहा है?
2. कवि ने सिंहिनी और भेड़ की प्रकृति मे क्या अंतर बनाया है?
3. कविता मे शूर-वीरो की किन विशेषताओं का उल्लेख हुआ है?
4. निम्नलिखित पंक्तियों के भाव एवं विचार सौंदर्य को स्पष्ट कीजिए ·
   (क) योग्य जन जीता है, पश्चिम की उक्ति नही, गीता है, गीता है।
   (ख) शोकहारी ! पहुँचे थे वहाँ, जहाँ आसन है सहस्रार।
   (ग) एक मेष माता ही रहती है निर्निमेष।
5. प्रस्तुत कविता के संदेश को अपने शब्दो मे लिखिए।

योग्यता-विस्तार

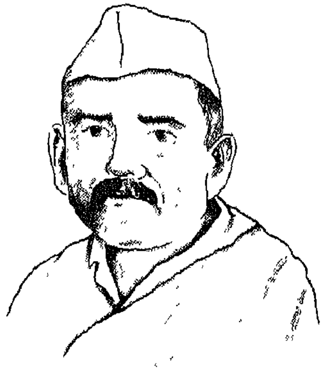
1. 'आत्मरक्षा के लिए अपने से अधिक शक्तिशाली से भी लड जाना कहाँ तक युक्तिसगत है।' इस विषय पर कक्षा में एक परिचर्चा का आयोजन कीजिए।
2 तुलसी की 'सूर समर करनी करहि, कहि न जनावहि आप' कविता को खोजकर पढ़िए और प्रस्तुत कविता से उसकी तुलना कीजिए।
3. इतिहास की पुस्तक से औरंगजेब और गुरु गोविंदसिंह के युद्ध संबधी विवरण को पढ़िए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

सिंधु-नद तीर वासी	–	सिंधु नदी के किनारे बसने वाले लोग, भारतवासियों के लिए प्रयुक्त
सैंधव तुरंग	–	सिंधु प्रदेश के घोडे
चतुरंग-चमू	–	चारो प्रकार की सेना (रथ, हाथी, घोड़े और पैदल)
वीर-जनमोहन	–	वीरो को मोहित करने वाला
दुर्जय	–	जिसे जीतना कठिन हो
संग्राम-राग	–	युद्ध-गान
भाल	–	माथा, ललाट
अनल	–	अग्नि
तीनों गुण	–	सत, रज, तम
ताप त्रय	–	दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट
मृत्युंजय	–	मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले
व्योमकेश	–	शिव
भेद कर सप्तावरण	–	सात लोकों (भू, भुव, स्व, मह, तप, जन, सत्य) के पार

शोकहारी	–	दु ख-क्लेश मिटाने वाले
सहस्त्रार	–	सहस्त्र दल कमल
मेष	–	भेड
निर्निमेष	–	अपलक
अभिशप्त	–	शापग्रस्त
कूर	–	क्रूर
समर सरताज	–	श्रेष्ठ योद्धा
बाधा-विहीन-बंध छंद ज्यों	–	मुक्त छंद के समान बंधन रहित
सच्चिदानंद रूप	–	सत्, चित, आनद, परमात्मा रूप
अणुओं परमाणुओं	–	प्रत्येक कण-कण मे
नश्वर	–	नष्ट होने वाला
कामपरता	–	काम के प्रति आसक्ति
पदरज	–	पैरो की धूल

माखनलाल चतुर्वेदी



माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म सन 1889 मे होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) ज़िले के बाबई गॉव में हुआ। उन्होंने नार्मल परीक्षा पास करके अध्यापन-कार्य प्रारंभ किया। इसी बीच उन्होने हिंदी के साथ संस्कृत, मराठी, गुजराती और अंग्रेज़ी आदि भाषाओ का अध्ययन किया। कुछ वर्ष बाद वे अध्यापन-कार्य छोडकर **प्रभा** पत्रिका के सपादकीय विभाग में कार्य करने लगे। यहीं उनका परिचय गणेश शंकर विद्‌यार्थी से हुआ, जिनके देश-प्रेम और सेवा-व्रत का उन पर गहरा असर पड़ा। बाद में वे **कर्मवीर** के संपादक नियुक्त किए गए। उसी समय उन्होने **एक भारतीय आत्मा** उपनाम से ओजपूर्ण राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं। सन 1921-22 के असहयोग आंदोलन मे उन्होंने सक्रिय भाग लिया, फलतः उन्हें कारावास का दंड भी भोगना पडा। सन 1924 में गणेश शंकर विद्‌यार्थी की गिरफ़्तारी के बाद उन्होंने **प्रताप** का संपादकीय कार्य सॅभाला। उनकी साहित्य-सेवा के लिए सागर विश्वविद्‌यालय ने उन्हे डी. लिट्. की मानद उपाधि से तथा भारत सरकार ने **पद्‌मभूषण** से अलकृत किया। चतुर्वेदी जी का निधन सन 1968 में हुआ।

चतुर्वेदी जी का काव्य मुख्यतः राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। उनकी कविताओं में स्वातंत्र्य प्रेम के साथ त्याग और बलिदान की भावना का स्वर सर्वत्र मिलता है। उनकी राष्ट्रीय कविताओं मे आदर्श और उपदेश की थोथी उड़ाने भर नही हैं, बल्कि राष्ट्रीय संग्राम में सक्रिय भाग लेने के कारण उनके स्वरों में बलिदानी वीरों की सच्चाई, निर्भीकता और कष्टों को झेलने की अदम्य आकांक्षा भी है। उनकी आरंभिक रचनाओं में भक्तिपरक और आध्यात्मिक भावों एवं विचारों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त उन्होने प्रेम और प्रकृति-संबंधी कविताऍ भी लिखी हैं। स्वाधीनता आंदोलन को वाणी प्रदान करने वाले कवियों में उनका प्रमुख स्थान है।

चतुर्वेदी जी का ध्यान मूलतः भाव पर केंद्रित रहता है, अतः कविता के बाह्य बंधनो को वे पूरी तरह स्वीकार नही पर पाते। छ्द-विधान में नवीनता लाने के लिए दो-तीन छंदो को मिलाकर नवीन छंद-योजना भी उन्होंने की है। शब्द-चयन मे तत्सम या तद्भव का बंधन भी उन्होंने स्वीकार नही किया। बोलचाल के शब्दों के साथ उर्दू-फ़ारसी के शब्द भी उनकी कविता मे मिलते हैं।

हिमकिरीटिनी, हिमतरंगिणी, युगचरण, समर्पण, माता, वेणु लो गूँजे धरा, इनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं। चतुर्वेदी जी की सभी रचनाएँ **माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली** में संकलित हैं। वे एक सफल गद्यकार भी हैं।

प्रस्तुत कविता में भारतीय कृषक की गौरव-गाथा का चित्रण हुआ है। उसे जनसाधारण का हमजोली, प्रतिकूल प्राकृतिक स्थितियों से लड़ने वाला, मेहनतकश और सबको रोटी का दाता आदि बताया है और कवि उस पर सब कुछ न्योछावर करने को तैयार है। साथ ही वह शासन-प्रशासन और कला साधकों से अपेक्षा रखता है कि वे किसान के हितों की रक्षा करे और उसे अपनी कलाओं में चित्रित करे।

ये अनाज की पूलें तेरे काँधे झूलें

तेरा चौडा छाता
रे जन-गण के भ्राता
शिशिर ग्रीष्म वर्षा से लडते
भू-स्वामी, निर्माता !



कीच, धूल, गंदगी बदन पर
लेकर ओ मेहनतकश !
गाता फिरे विश्व में भारत
तेरा ही नव-श्रम-यश !

तेरी एक मुसकराहट पर
वीर पीढियाँ फूले।
ये अनाज की पूलें
तेरे काँधे झूलें !

इन भुजदंडो पर अर्पित
सौ-सौ युग, सौ-सौ हिमगिरि
सौ-सौ भागीरथी निछावर
तेरे कोटि-कोटि शिर !

ये ऊगी बिन ऊगी फ़सलें
तेरी प्राण कहानी
हर रोटी ने, रक्त बूँद ने
तेरी छवि पहचानी !

वायु तुम्हारी उज्ज्वल गाथा
सूर्य तुम्हारा रथ है,
बीहड़ काँटों भरा कीचमय
एक तुम्हारा पथ है।

यह शासन, यह कला, तपस्या
तुझे कभी मत भूलें।
ये अनाज की पूलें
तेरे काँधे झूले !



प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

मौखिक

1 'ये अनाज की पूले तेरे काँधे झूलें' का आशय स्पष्ट कीजिए।
2 कवि ने 'जन-गण के भ्राला' किसे कहा है और उसके छत्र को चौडा क्यो बताया है?
3. विश्व में भारत की पहचान किससे है और क्यों?

लिखित

1. कवि किसान की भुजाओं पर सौ-सौ युग, सौ-सौ हिमालय और सौ-सौ गगा क्यो न्योछावर करना चाहता है?
2. खेतों की फ़सलो को किसान का प्राण क्यों कहा गया है?
3. 'हर रोटी ने, रक्त बूँद ने तेरी छवि पहचानी !' की व्याख्या कीजिए।

4 कवि ने वायु को किसान की उज्ज्वल गाथा और सूर्य को उसका रथ क्यों बताया है?

5 शासन, कला और तपस्या द्वारा किसान को न भुलाए जाने से कवि का क्या अभिप्राय है?

योग्यता-विस्तार

1. भारतीय किसानो के जीवन और गाँव से सबधित कुछ कविताओ का संकलन कीजिए।
2. रवीद्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' से उस कविता को खोज़कर पढ़िए, जिसमे कवि मंदिर के बंद अँधेरे कोने मे बैठकर पूजा-तपस्या करने को छोड़कर किसानों के श्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदों में ईश्वर-दर्शन की प्रेरणा देता है। इस कविता की भावभूमि से प्रस्तुत कविता की तुलना कीजिए।
3. 'आज के प्रौद्योगिकी युग मे भारतीय किसान' विषय पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अनाज की पूलें – अनाज के पौधों के गट्ठर

जन-गण – जनसमूह

भू-स्वामी – किसान

नव-श्रम-यश – नए-नए परिश्रम की यश गाथा

भुजदंड – भुजाएँ

सौ-सौ युग – अनगिनत युग, अनंत काल

सौ-सौ हिमगिरि – अनगिनत हिमालय, असीम दृढ़ता

सौ-सौ भागीरथी – अनगिनत गंगा, निरंतर गतिशीलता

सूर्य तुम्हारा रथ – खेती की प्रगति सूर्य के प्रकाश पर निर्भर है

वायु तुम्हारी उज्ज्वल गाथा – तुम्हारे श्रम की उज्ज्वल गाथा वायु के समान सर्वत्र सचरित है।

सुभद्राकुमारी चौहान



सुभद्राकुमारी का जन्म सन 1904 में इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) के एक सपन्न परिवार मे हुआ। बचपन से ही इनको हिंदी के काव्यग्रंथों से विशेष प्रेम था। इन्होने प्रथम काव्य रचना 15 वर्ष की आयु में की। इनका विवाह खंडवा (मध्य प्रदेश) निवासी ठा. लक्ष्मणसिह चौहान के साथ हुआ। विवाह के साथ ही इनके जीवन-क्रम में एक नया मोड़ आ गया। पति के साथ वे भी महात्मा गांधी के आंदोलन से जुड़ गईं और राष्ट्र-प्रेम पर कविताएँ लिखने लगीं। सन 1948 में इनकी असामयिक मृत्यु हो गई।

सुभद्राकुमारी चौहान की काव्य-साधना के पीछे उत्कट देश-प्रेम, साहस और बलिदान की भावना है। वे राष्ट्रीय आदोलन में बराबर सक्रिय भाग लेती रहीं। कई बार जेल भी गईं। देश को स्वतत्र कराने के लिए जेल-जीवन की यातनाएँ सहने मे इन्हें जितना सुख मिलता था उतना ही सुख उन सात्विक अनुभूतियो को कविता द्वारा व्यक्त करने में भी प्राप्त होता था। साहित्य और राजनीतिक जीवन में समान रूप से भाग लेकर अंत तक देश की एक जागरूक नारी के रूप में अपना कर्तव्य निभाती रहीं।

सुभद्राकुमारी चौहान मुख्यत. कवयित्री थीं। उनकी कविताओं में दो प्रवृत्तियाँ विशेषरूप से महत्त्व की हैं – पहली तो राष्ट्रीय भावना की और दूसरी घरेलू जीवन की। उनकी राष्ट्रीय कविताओं में समसामयिक देशप्रेम और भारतीय इतिहास एवं सस्कृति की गहरी छाप है। सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी राष्ट्रीय रचनाओं में जिस प्रतिभा के साथ सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय भावनाओ को समसामयिक राजनीतिक जीवन के तात्कालिक संदर्भो से जोडा है, उससे उनकी प्रतिभा का विशेष परिचय प्राप्त होता है। सुभद्राकुमारी चौहान ने कहानी और निबंध विधा में भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उनकी कहानियाँ राष्ट्रीय आदर्श और यथार्थ के मर्मस्पर्शी संघर्षो पर आधारित हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान की भाषा सरल और स्वाभाविक है। उन्होंने अपनी रचनाओ मे पारिवारिक जीवन के मोहक चित्र अंकित किए है, जिनमे वात्सल्य की मधुर व्यंजना हुई है। उनके काव्य मे नारी-सुलभ ममता और सुकुमारता है, साथ ही वीरांगना का शौर्य एवं ओज भी है। अलंकारों या कल्पित प्रतीकों के मोह मे न पडकर अनुभूति को स्वच्छ रूप से प्रकट करने में ही उनकी कला सार्थकता पाती है।

***मुकुल** और **त्रिधारा** उनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। **सीधे-सादे चित्र, बिखरे मोती** और **उन्मादिनी** उनकी कहानियों के संकलन है।*

प्रस्तुत कविता में नारी को शक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। पति ने किसी व्यक्तिगत संदर्भ में पत्नी को अपने साथ बिताए गए क्षणो को भूलकर, शेष जीवन को अपने ढंग से जीने का आग्रह किया, किंतु पत्नी ने इसे स्वयं अपने लिए ही नही, पति के लिए भी असंभव बताया। पति की सच्ची मार्ग दर्शिका और शक्ति के रूप मे स्वयं को प्रतिष्ठित करते हुए, पति को भी चुनौती दे डाली कि तुम भूलकर दिखाओ तो !

स्मृतियाँ

क्या कहते हो? किसी तरह भी
भूलूँ और भुलाने दूँ?
गत जीवन को तरल मेघ-सा
स्मृति-नभ में मिट जाने दूँ?

शांति और सुख से ये
जीवन के दिन शेष बिताने दूँ?
कोई निश्चित मार्ग बनाकर
चलूँ तुम्हें भी जाने दूँ?

कैसा निश्चित मार्ग? हृदय-धन
समझ नहीं पाती हूँ मैं
वही समझने एक बार फिर
क्षमा करो आती हूँ मैं।

जहाँ तुम्हारे चरण, वहीं पर
पद-रज बनी पड़ी हूँ मैं
मेरा निश्चित मार्ग यही है
ध्रुव-सी अटल अड़ी हूँ मैं।

भूलो तो सर्वस्व ! भला वे
दर्शन की प्यासी घड़ियाँ
भूलो मधुर मिलन को, भूलो
बातों की उलझी लड़ियाँ।

भूलो प्रीति प्रतिज्ञाओं को
आशाओं विश्वासो को
भूलो अगर भूल सकते हो
आँसू और उसासो को।

मुझे छोडकर तुम्हें प्राणधन
सुख या शांति नहीं होगी
यही बात तुम भी कहते थे
सोचो, भ्रांति नहीं होगी।

सुख को मधुर बनाने वाले
दु:ख को भूल नही सकते
सुख मे कसक उठूँगी मैं प्रिय
मुझको भूल नहीं सकते।

मुझको कैसे भूल सकोगे
जीवन-पथ-दर्शक मैं थी
प्राणों की थी प्राण हृदय की
सोचो तो, हर्षक मै थी।

मैं थी उज्ज्वल स्फूर्ति, पूर्ति
थी प्यारी अभिलाषाओं की
मैं ही तो थी मूर्ति तुम्हारी
बड़ी-बड़ी आशाओं की।

आओ चलो, कहाँ जाओगे
मुझे अकेली छोड़, सखे !
बँधे हुए हो हृदय-पाश में
नहीं सकोगे तोड़, सखे !

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

मौखिक

1. कवयित्री ने कविता मे किन स्मृतियों की ओर संकेत किया है?
2. पति ने पत्नी को कौन-सा निश्चित मार्ग बनाने की सलाह दी और पत्नी ने अपना निश्चित मार्ग किसे बनाया?
3 'मुझको कैसे भूल सकोगे, जीवन-पथ-दर्शक मै थी' पक्ति में कवयित्री का कौन-सा भाव व्यक्त हुआ है?
   (क) अहंकार
   (ख) दृढ विश्वास
   (ग) मान का भाव
   (घ) धमकी
4 कविता की किन पंक्तियों मे नारी को शक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है?

लिखित

1. निम्नलिखित पक्तियो के सौंदर्य को स्पष्ट कीजिए :
   (क) गत जीवन को तरल मेघ-सा
   स्मृति-नभ में मिट जाने दूँ?
   (ख) मेरा निश्चित मार्ग यही है
   ध्रुव-सी अटल खड़ी हूँ मै।
2. कविता में प्राचीन भारतीय नारी के किन आदर्शों का उल्लेख हुआ है?

योग्यता-विस्तार

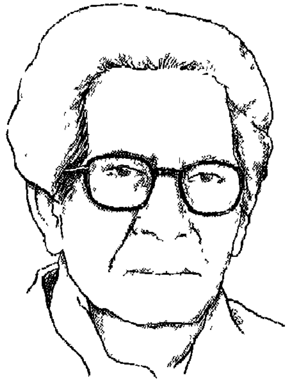
1. 'नारी ही पुरुष की वास्तविक शक्ति है।'– विषय पर अपनी कक्षा मे चर्चा कीजिए।
2 'बँधे हुए हो हृदय-पाश मे, नहीं सकोगे तोड़ सखे !' पंक्ति की तुलना कीजिए :
   बाँह छुड़ाए जात हो, निबल जानिकै मोहि।
   हृदय से जब जाइहों, सबल बदौंगो तोहि।

शब्दार्थ और टिप्पणी

गत जीवन – पूर्व समय मे बिताया जीवन
तरल मेघ-सा – जल भरे मेघ के समान

स्मृति-नभ	–	स्मृतियो रो पूर्ण हृदय
हृदय-धन	–	प्रियतम
ध्रुव-सी	–	ध्रुव के समान अटल
अड़ी	–	दृढ़प्रतिज्ञ
सर्वस्व	–	राब कुछ, प्रियतम
प्यासी घड़ियाँ	–	अतृप्त क्षण
उलझी लड़ियाँ	–	उलझन भरी घटनाएँ, बातें
उसासों	–	निश्वास, आहें
भ्रांति	–	भ्रम
जीवन-पथ दर्शक	–	जीवन का मार्गदर्शक
हर्षक	–	सुखदायक
हृदय-पाश	–	हृदय के बधन में
सखे	–	प्रियतम

हरिवंश राय 'बच्चन'



हरिवंश राय बच्चन का जन्म सन 1907 मे इलाहाबाद मे हुआ। उन्होंने सन 1938 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में एम.ए. किया। बच्चन जी सन 1942 से 1952 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे अग्रेज़ी के प्रवक्ता रहे। सन 1952 से 1954 तक इंग्लैंड में रहकर उन्होने कैंब्रिज यूनिवर्सिटी से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपने अंग्रेज़ी कवि यीट्स पर अपना शोधप्रबध प्रस्तुत किया, जो पर्याप्त प्रशसित हुआ था। इंग्लैंड से आने पर उन्होंने कुछ महीनो तक अपने पूर्व पद पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में और तत्पश्चात् आकाशवाणी इलाहाबाद में काम किया। दिसंबर, 1955 में भारत सरकार ने उन्हे विदेश मत्रालय मे हिंदी विशेषज्ञ के पद पर नियुक्त किया और वहीं से उन्होने अवकाश ग्रहण किया। आप राज्यसभा के मनोनीत सदस्य भी रहे। आपको सन 1976 में **पद्मभूषण** की उपाधि दी गई। **दो चट्टानें** पर आपको 1969 में **साहित्य अकादमी** का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। बच्चन जी का निधन सन् 2003 में हुआ।

काव्य-यात्रा के आरंभ में बच्चन जी उमर खैयाम के जीवन-दर्शन से बहुत प्रभावित रहे। इसका परिणाम हुआ, **मधुशाला** की रचना, जिसका प्रकाशन सन 1935 मे हुआ। कवि सम्मेलनो में **मधुशाला** की पाठ-शैली और उसके कथ्य के प्रभाव के कारण बच्चन जी काव्य प्रेमियों के लोकप्रिय कवि हो गए।

बच्चन जी की कविताओं मे जीवन की अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। संगीतात्मक प्रवाह और मार्मिकता उनके काव्य की निजी विशेषताएँ हैं। बच्चन ने सीधी-सादी, जीवत भाषा और सर्वग्राह्य गेय शैली में अपनी बात को कहने का प्रयास किया है। उन्होंने अनुभूति से प्रेरणा पाई और अनुभूति को ही काव्याभिव्यक्ति देना उनका ध्येय रहा है। बच्चन की कविता की लोकप्रियता का मुख्य कारण उनकी

सहजता और संवेदनशील सरलता है। कवि सम्मेलनों के माध्यम से बच्चन अपने पाठकों-श्रोताओं के निकट आए हैं।

बच्चन की प्रमुख रचनाएँ हैं – ***मधुशाला, मधुकलश, निशा निमंत्रण, एकांत संगीत, मिलन, सतरंगिनी, विकल विश्व, आरती और अंगारे*** *आदि।*

बच्चन जी ने गद्य रचनाएँ भी की हैं, जिनमें चार भागो में प्रकाशित उनकी आत्मकथा विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

जड़ की मुसकान में *यह तथ्य व्यजित हुआ है कि प्रगति करने पर लोग प्रायः अपने मूलभूत आधार को भूल जाते हैं और सारी प्रगति का श्रेय स्वयं लेते है। वही प्रासाद भव्य, उच्च और मज़बूत होगा, जिसकी नींव मज़बूत होगी। कविता मे वृक्ष का तना जड़ को निर्जीव बताता है। डाले तने को, पत्तियाँ डालों को और फूल पत्तियो को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और स्वयं अपनी सुंदरता और उपयोगिता की शेखी बघारते हैं किंतु वे नहीं जानते कि उनका अस्तित्व तभी तक है, जब तक पेड़ की जड विद्यमान है।*

जड़ की मुसकान

एक दिन तने ने भी कहा था,
जड़?
जड़ तो जड़ ही है ;
जीवन से सदा डरी रही है,
और यही है उसका सारा इतिहास
कि ज़मीन में मुँह गड़ाए पड़ी रही है ;
लेकिन मैं ज़मीन से ऊपर उठा,
बाहर निकला,
बढ़ा हूँ,
मज़बूत बना हूँ,
इसी से तो तना हूँ।

एक दिन डालों ने भी कहा था,
तना?
किस बात पर है तना?
जहाँ बिठाल दिया गया था वहीं पर है बना ;
प्रगतिशील जगती में तिल भर नहीं डोला है,
खाया है, मोटाया है, सहलाया चोला है ;
लेकिन हम तने से फूटीं,
दिशा-दिशा में गईं
ऊपर उठीं,
नीचे आईं

हर हवा के लिए दोल बनीं, लहराईं,
इसी से तो डाल कहलाईं।

एक दिन पत्तियों ने भी कहा था,
डाल?
डाल में क्या है कमाल?
माना वह झूमी, झुकी, डोली है
ध्वनि-प्रधान दुनिया में
एक शब्द भी वह कभी बोली है?
लेकिन हम हर-हर स्वर करती हैं,
मर्मर स्वर मर्मभरा भरती हैं,
नूतन हर वर्ष हुईं,
पतझर में झर
बहार-फूट फिर छहरती हैं,
विथकित-चित्त पंथी का
शाप-ताप हरती हैं।

एक दिन फूलों ने भी कहा था,
पत्तियाँ?
पत्तियों ने क्या किया?
संख्या के बल पर बस डालों को छाप लिया,
डालों के बल पर ही चल-चपल रही हैं,
हवाओं के बल पर ही मचल रही हैं ;
लेकिन हम अपने से खुले, खिले, फूले हैं –
रंग लिए, रस लिए, पराग लिए –
हमारी यश-गंध दूर-दूर-दूर फैली है,
भ्रमरों ने आकर हमारे गुन गाए हैं,
हम पर बौराए हैं।

सबकी सुन पाई है,
जड़ मुसकराई है !

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

मौखिक

1 तने ने जड़ को निर्जीव क्यों कहा है?
2. डाल ने अपनी क्या सार्थकता बताई है?
3. पत्तियाँ डाल की किस कमी की ओर संकेत करती हैं?
4. फूलों ने पत्तियों की चंचलता का क्या आधार बताया है?
5. निम्नलिखित पंक्तियो में अलकार सौंदर्य स्पष्ट कीजिए :
   (क) जड़ तो जड़ ही है।
   (ख) इसी से तो तना हूँ।
6. प्रस्तुत कविता मे तना, डाल, पत्ती और फूल में मानवी-चेतना का आरोप हुआ है। कविता से उन पंक्तियों को उद्धृत कीजिए, जिनमें यह मानवीकरण सर्वाधिक जीवत रूप में व्यक्त हुआ है।

लिखित

1. डाले तने को प्रगतिशील क्यों नहीं मानतीं?
2. पत्तियाँ अपनी किन विशेषताओं का बखान करती हैं?
3. किन कारणों से फूल स्वयं को पत्तियो से श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं?
4. जड़ की मुसकान के रहस्य को स्पष्ट कीजिए।
5. जड़ के अभाव में तने, शाखाओं, पत्तियों और फूलों का क्या हश्र होता?
6. तने, शाखाओं, पत्तियों और फूलो के द्वारा अपनी श्रेष्ठता दर्शाने के लिए दिए गए तर्कों में से आप किस तर्क को अधिक युक्ति-संगत मानते हैं और क्यों?

योग्यता-विस्तार

1. वृक्ष के विभिन्न अवयवों – जड़, तना, डाल, पत्ती और फूल के साथ फल को भी शामिल कीजिए और कविता को आगे बढ़ाते हुए निम्नलिखित पंक्तियों को पूरा कीजिए :

   एक दिन फलों ने भी कहा था
   फूल?
   भूलते हैं बेचारे
   वृथा ही फूलते हैं
   आज फूले हैं
   कल.........

इन फूलों का यही.... ....
हमें देखो,
हम पशु पक्षी और.........का
.................भरते हैं
उन्हें ज़िंदा रखने को
खुद ....हैं।

2. 'वही राष्ट्र मजबूत होता है, जिसकी संस्कृति मज़बूत जड़ के समान होती है।' विषय पर एक छोटा-सा लेख लिखिए।

3. रामवृक्ष बेनीपुरी का 'नींव की ईंट' निबध पढिए और जड़ की सार्थकता पर चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

तना हूँ	–	दृढ़तापूर्वक खड़ा हूँ
तना	–	घमंड करना
जगती	–	संसार
डोला	–	गतिशील
सहलाया चोला	–	सुविधाभोगी शरीर
दोल	–	हिलना
ध्वनि-प्रधान दुनिया	–	शब्दों की दुनिया
हर-हर स्वर	–	सुरीली आवाज़
विथकित चित्त	–	थका हुआ मन
पंथी	–	राहगीर, पथिक

केदारनाथ अग्रवाल



केदारनाथ अग्रवाल का जन्म बाँदा ज़िले के कमासिन गाँव मे सन 1911 में हुआ। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. पास करके आगरा विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की और बाँदा में वकालत करने लगे। वकालत करने के साथ-साथ वे काव्य-साधना मे संलग्न रहे। हिंदी के प्रगतिशील आंदोलन से उनका घनिष्ठ संबंध रहा है। उनके काव्य में चुभता हुआ यथार्थ है और भारत में वर्गहीन समाज की स्थापना का संकल्प।

केदारनाथ अग्रवाल का निधन सन 2000 में हुआ।

अग्रवाल जी को कविता लिखने की प्रेरणा इंटर के अपने अध्यापक रामकृष्ण 'शिलीमुख' से मिली। उन्हीं दिनों अग्रवाल जी के खड़ीबोली में कुछ कवित्त-सवैये लखनऊ की माधुरी पत्रिका में प्रकाशित हुए। वे कवि-सम्मेलनों में प्रायः आते-जाते रहते थे, अतः विश्वविद्यालय मे पहुँचने पर उनका परिचय एक ओर 'रत्नाकर' जी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और 'रसाल' जी से हुआ तो दूसरी ओर निराला और पंत से। **नींद के बादल** उनका पहला कविता-संग्रह है, जिसमें प्रणय संबंधी रचनाओ की अधिकता है। दूसरे काव्य-संग्रह **युग की गंगा** में साधारण जीवन और प्रकृति के मार्मिक चित्रण हैं। तीसरे संग्रह **लोक तथा आलोक** में प्रगतिशील रचनाएँ हैं, जिनमें शोषकों के प्रति तीव्र आक्रोश है। **फूल नहीं, रंग बोलते हैं** में प्रायः उपर्युक्त तीनों की मर्मस्पर्शी रचनाओं का संकलन है। इधर छायावाद काल में प्रगतिवादी आंदोलन को जिन थोड़े-से कवियों से बल मिला, उनमे केदारनाथ अग्रवाल प्रमुख हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने पूँजीवादी सभ्यता के दोष गिनाते हुए पूँजीपतियों की क्रूरता और हृदयहीनता की खुलकर निंदा की है। शैलीकार के रूप मे मुक्त छंद और गीति का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। उनके शब्द-चयन मे कलात्मकता है और भावाभिव्यक्ति यथार्थ पर आधारित रहती है। उनकी अधिकतर कविताओ की

अर्थवत्ता उनके शीर्षकों से व्यंजित होती है। उनकी प्रकृति संबंधी रचनाओं की लोकप्रियता का कारण प्रकृति का गतिमय एवं सजीव चित्रण है। भाषा उनके भावों का अनुगमन करती है। अग्रवाल जी की मुख्य रचनाएँ हैं – ***नींद के बादल, युग की गंगा, लोक तथा आलोक, फूल नहीं, रंग बोलते हैं, पंख और पतवार।*** *इन काव्य-संग्रहों के अतिरिक्त उन्होंने यात्रा के रोचक संस्मरण भी लिखे हैं।*

इस पाठ में दो छोटी कविताएँ ली गई हैं, पहली कविता ***जीवन से*** *में कवि अपने तन-मन को सुंदर बनाने के लिए रंगीन, जीवंत, स्वच्छ और उज्ज्वल जीवन का आह्वान करता है। वह उसे पाना ही नहीं बल्कि भरपूर जीना चाहता है ताकि जीवन की तमाम छोटी-मोटी उपलब्धियाँ और घटनाओं के घात-प्रतिघात भी एक अलौकिक प्रकाश से जगमगा उठें और साथ ही प्रबल हो उठें।*

दूसरी कविता ***वीरांगना*** *में नारी को वीरांगना के रूप में चित्रित किया गया है और उसे लोहे का रूपक दिया गया है। जैसे लोहा आग में तपता है, गलता, पिघलता है और फिर मनचाहे अगणित रूपों में ढाल दिया जाता है, वैसे ही नारी लोहे के समान दृढ़ रहते हुए भी विषम सामाजिक परिस्थितियों में तपती है, स्वयं को गलाती है और फिर अपने विभिन्न रूपों – माँ, बहिन, पत्नी, सखी, बेटी और प्रेमिका आदि में ढल जाती है। अपने कोमल और मृदुल रूप के साथ-साथ वह कभी बंदूक की गोली की तरह प्रहारक भी बन जाती है।*

(क) जीवन से

ऐसे आओ
जैसे गिरि के शृंग शीश पर
रंग-रूप का क्रीट लगाए
बादल आए
हंस-माल-माला लहराए
और शिला-तन —
कांति निकेतन-तन बन जाए
तब मेरा मन
तुम्हें प्राप्त कर —
आत्मसात् कर,
स्वयं तुम्हारी आकांक्षा का
बन जाएगा छवि का सागर,
जिसके तट पर,
शंख-सीप, लहरों के मणिधर
आएँगे-खेलेंगे मनहर,
और हँसेगा दिव्य दिवाकर।

(ख) वीरांगना

मैंने उसको
जब-जब देखा
लोहा देखा
लोहे जैसा
तपते देखा
गलते देखा
ढलते देखा
मैंने उसको
गोली जैसा
चलते देखा।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) जीवन से

मौखिक

1. *सुंदर तन-मन के निर्माण के लिए कवि ने किस का आह्वान किया है? (क) बादलों का (ख)* जीवन का (ग) हंसों की पाँत का (घ) कांति का ।
2. पर्वत की सुंदरता बढ़ाने के लिए कवि ने किन आभूषणों की कल्पना की है?
3. जीवन की रंगीनी को प्राप्त करने के बाद भी कवि उसे आत्मसात करने पर बल क्यों दे रहा है?

लिखित

1. कवि के अनुसार मानव के तन-मन को सौंदर्य का सागर किस प्रकार बनाया जा सकता है?
2. जीवन में शंख-सीपो के बिखरने और लहरों के सर्पो के खेलने से कवि का क्या आशय है?

3. अलौकिक सूर्य के हँसने का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

योग्यता-विस्तार

'मैं ऐसा जीवन जीना चाहता हूँ' विषय पर कक्षा में एक परिचर्चा का आयोजन कीजिए।

(ख) वीरांगना

मौखिक

1. 'मैंने उसको जब-जब देखा' में उसको कौन है?
2. 'गोली जैसा चलते देखा' में गोली की किस विशेषता की ओर संकेत किया गया है?
3. नारी स्वयं को किन-किन रूपों में ढाल लेती है?

लिखित

1. नारी वीरांगना कब बन पाती है?
2. नारी को लोहा रूप में देखने के पीछे कवि का क्या मंतव्य है?
3. यदि इस कविता का शीर्षक 'वीरांगना' हटा दिया जाए तो आपकी दृष्टि में कविता मे प्रयुक्त ' उसको' शब्द किस-किस की ओर संकेत कर सकता है?

योग्यता-विस्तार

1. 'शक्ति रूपा नारी' विषय पर एक निबंध लिखिए।
2. भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध ऐसी नारियों की सूची बनाइए, जिन्होंने जीवन की विविध जिम्मेदारियो को पूरा करते हुए भी अपने शक्ति रूप का परिचय दिया हो।
3. आज के 'नारी सशक्तीकरण' आंदोलन से आप क्या समझते हैं? इस संबंध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

(क) जीवन से

शृंग शीश – सबसे ऊँची चोटी
क्रीट – किरीट, मुकुट
हंस-माल-माला – हंसों की पंक्ति रूपी माला
कांति निकेतन – सौंदर्य का भंडार
तुम्हे प्राप्त कर – जीवन की रंगीनी को पाकर
आत्मसात् कर – पूरी तरह अपनाकर, भरपूर जीकर
आकांक्षा – इच्छा, अपेक्षा

छवि का सागर	–	सौंदर्य का भंडार
शंख-सीप	–	जीवन की छोटी-मोटी उपलब्धियाँ
लहरों के मणिधर	–	लहरो के साँप, जीवन में घटने वाली घटनाओं के घात-प्रतिघात।
मनहर	–	मोहक, सुखद
हँसेगा दिव्य दिवाकर	–	जीवन की छोटी-मोटी उपलब्धियाँ और सुख-दुःख एक अलौकिक प्रकाश से आलोकित हो उठेंगे।

(ख) वीरांगना

लोहा	–	धातु विशेष, अत्यंत मजबूत, ठोस
तपना	–	तपस्या करना, कष्ट सहना
गलते देखा	–	खपते देखा
ढलते देखा	–	नए-नए रूपो में बदलते हुए देखा

शिवमंगल सिंह 'सुमन'



शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के झगरपुर ग्राम में सन 1916 मे हुआ। विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर से उन्होंने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात बनारस हिंदू विश्वविद्‌यालय से एम.ए. और बाद में डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त की। कुछ समय तक राजकीय कॉलेज इंदौर और उज्जैन में अध्यापन कार्य के बाद नेपाल स्थित भारतीय दूतावास में सांस्कृतिक सहायक के रूप में कार्य किया। कई वर्ष माधव कॉलेज, उज्जैन के प्राचार्य रहने के बाद नौ वर्ष तक विक्रम विश्वविद्‌यालय, उज्जैन के कुलपति रहे।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का निधन सन 2002 में हुआ।

सुमन जी ने छात्र जीवन से ही कविता लिखना प्रारंभ किया और छात्रों में लोकप्रियता प्राप्त की। वे मूलतः प्रगतिशील कवि हैं और वर्गहीन समाज की कामना करते हैं। पूँजीवाद के प्रति उनमें गहरा आक्रोश और शोषित वर्ग के प्रति गहरी संवेदना है। उनकी रचनाओं में उत्कृष्ट राष्ट्रीयता और नवजागरण के स्वर हैं।

'सुमन' जी की भाषा ओज़पूर्ण, प्रवाहमयी और सहज है। उनकी भाषा ने उनके काव्य को संगीतमय बनाया है। मुख्य रूप से उन्होंने गीति-शैली को अपनाया है। 'सुमन' जी के गीतों में गीतात्मकता कम और गेयता अधिक है। उनकी प्रायः सभी कविताएँ ध्वनि-माधुर्य से ओत-प्रोत हैं। 'सुमन' जी ने कुछ छंदमुक्त कविताओं की भी रचना की है।

सुमन जी की मुख्य रचनाएँ हैं – ***हिल्लोल, जीवनगान, विंध्य हिमालय, प्रलय-प्रलय, युग का गीत, विश्वास बढ़ता ही गया पर आँखें नहीं भरीं, मिट्टी की बारात।***

प्रस्तुत कविता में मिट्टी की महिमा का रोचक चित्रण हुआ है। इस ब्रह्मांड में मिट्टी सर्वाधिक निरीह, दबी-कुचली और कुटी-पिटी वस्तु होती है, लेकिन वही शाश्वत होती है और उपादेय भी। अगणित रूपों में ढलती है, मनुष्य तथा जीव-जंतु आदि सभी मिट्टी से उत्पन्न हैं और अंततः मिट्टी में ही विलीन हो जाते हैं। मनुष्य मिट्टी की श्रेष्ठ कृति है।

मिट्टी की महिमा

निर्मम कुम्हार की थापी से
कितने रूपों में कुटी-पिटी,
हर बार बिखेरी गई किंतु
मिट्टी फिर भी तो नहीं मिटी।
आशा में निश्छल पल जाए, छलना में पड़कर छल जाए,
सूरज दमके तो तप जाए, रजनी ठुमके तो ढल जाए,
यों तो बच्चों की गुड़िया-सी भोली मिट्टी की हस्ती क्या,
आँधी आए तो उड़ जाए, पानी बरसे तो गल जाए,
फ़सलें उगतीं, फ़सलें कटतीं लेकिन धरती चिर उर्वर है।
सौ बार बने सौ बार मिटे लेकिन मिट्टी अविनश्वर है।
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है!

विरचे शिव, विष्णु विरंचि विपुल
अगणित ब्रह्मांड हिलाए हैं,
पलने में प्रलय झुलाया है
गोदी में कल्प खिलाए हैं।
रो दे तो पतझर आ जाए, हँस दे तो मधुऋतु छा जाए,
झूमे तो नंदन झूम उठे, थिरके तो तांडव शरमाए,
यों मदिरालय के प्याले-सी मिट्टी की मोहक मस्ती क्या,
अधरों को छूकर सकुचाए, ठोकर लग जाए छहराए।

उनचास मेघ, उनचास पवन, अंबर अवनी कर देते सम,
वर्षा थमती, आँधी रुकती, मिट्टी हँसती रहती हरदम।
कोयल उड़ जाती पर उसका निश्वास अमर हो जाता है
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है !

मिट्टी की महिमा मिटने में
मिट-मिट हर बार सँवरती है,
मिट्टी मिट्टी पर मिटती है
मिट्टी मिट्टी को रचती है।

मिट्टी में स्वर है, संयम है, होनी–अनहोनी कह जाए,
हँसकर हालाहल पी जाए, छाती पर सब-कुछ सह जाए,
यों तो ताशों के महलों-सी मिट्टी की वैभव-बस्ती क्या,
भूकंप उठे तो ढह जाए, बाढ आ जाए तो बह जाए।

लेकिन मानव का फूल खिला जबसे आकर वाणी का वर,
विधि का विधान लुट गया स्वर्ग अपवर्ग हो गए न्योछावर
कवि मिट जाता लेकिन उसका उच्छ्वास अमर हो जाता है
मिट्टी गल जाती, पर उसका विश्वास अमर हो जाता है !

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

मौखिक

1. कवि ने मिट्टी को 'बच्चों की गुड़िया-सी' क्यों कहा है?
2. वह कौन-सा विश्वास है, जो मिट्टी के गल जाने पर भी बना रहता है?

3. कविता की उन पंक्तियों को पढ़कर सुनाइए, जिनमें युगों-युगों से मिट्टी के अस्तित्व और उसके आश्चर्यजनक प्रभाव का चित्रण हुआ है।
4. मिट्टी की सहन शक्ति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

लिखित

1. 'मिट्टी फिर भी तो नहीं मिटी' का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. मिट्टी के बदलते स्वभाव का प्रकृति पर क्या प्रभाव पड़ता है?
3. निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए और उसके काव्य-सौंदर्य पर टिप्पणी कीजिए:

    मिट्टी की महिमा मिटने में
    मिट-मिट हर बार सँवरती है,
    मिट्टी मिट्टी पर मिटती है
    मिट्टी मिट्टी को रचती है।

4. मिट्टी की किस देन पर स्वर्ग-अपवर्ग को न्योछावर किया जा सकता है और क्यो?
5. इस कविता के आधार पर मिट्टी की महिमा का वर्णन कीजिए।

योग्यता-विस्तार

1 कबीर के निम्नलिखित दोहे को पढ़िए :

    माटी कहै कुम्हार सौं तू क्यो रूँदे मोहि।
    इक दिन ऐसा होएगा, मै रूँदूँगी तोहि।
    इस दोहे की तुलना कविता की प्रारंभिक चार पंक्तियों से कीजिए।

2. नरेश मेहता की 'मृत्तिका' कविता को पढ़िए और उसकी तुलना प्रस्तुत कविता से कीजिए।
3. 'मनुष्य ही मिट्टी की सर्वश्रेष्ठ कृति है।' इस विषय पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

छलना	–	छल-प्रपंच, धोखा देना
चिर उर्वर	–	हमेशा उपजाऊ बनी रहने वाली
अविनश्वर	–	जिसका कभी नाश नहीं होता, शाश्वत
मिट्टी गल जाती		गल जाने पर भी मिट्टी नष्ट नहीं होती।
.......हो जाता है	–	मिट्टी की शाश्वतता बनी रहती है।
विरचे	–	रचना की
विरंचि	–	ब्रह्मा
प्रलय	–	विनाश
कल्प	–	युग

नंदन –	देवताओ का वन
तांडव –	शिव का प्रलयकारी नृत्य
मदिरालय के प्याले-सी –	क्षणिक, मादक
छहराए –	बिखर जाना
उनचास मेघ –	भयंकर गर्जन करनेवाले विविध प्रकार के मेघ
उनचास पवन –	उनचास प्रकार के पवन, प्रलयकालीन प्रचंड पवन
सँवरना –	नए-नए रूपों में सजना
ताशों के महलों-सी –	काल्पनिक महल के समान
अपवर्ग –	मोक्ष
कवि का उच्छ्वास –	कवि के उद्‌गार/कविता
मिट्‌टी मिट्‌टी पर मिटती है मिट्‌टी मिट्‌टी को रचती है –	फसलें, पेड़-पौधे, पर्वत, जीव-जंतु, और मनुष्य आदि सभी मिट्‌टी की रचना है। मिटने पर ये सभी मिट्‌टी में मिल जाते हैं और नए सिरे से मिट्‌टी इनकी पुनर्रचना करती है।

भारतभूषण अग्रवाल



भारतभूषण अग्रवाल का जन्म मथुरा में तुलसी जयंती के दिन सन 1919 में हुआ। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आजीविका के लिए उन्होंने रुचि और अरुचि के अनेक कार्य किए। सर्वप्रथम उन्होंने **समाज सेवक** पत्रिका (कोलकाता से प्रकाशित) का संपादन किया। 1942 से 1947 तक उद्योग व्यवस्था में उच्च पदस्थ कर्मचारी के रूप में हाथरस में कार्य किया। **प्रतीक** (इलाहाबाद) के संपादन विभाग में कार्य करने के बाद आकाशवाणी में कार्यक्रम अधिकारी और साहित्य अकादमी में सहायक सचिव के पद पर 1960 से 1974 तक कार्य किया। उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, में कुछ समय के लिए फ़ेलो रहे।

भारतभूषण अग्रवाल का निधन सन 1975 में हुआ।

भारतभूषण अग्रवाल की कविता-यात्रा काफ़ी लंबी है जो द्विवेदी युगीन मुहावरे यानी तुक-प्रधान रचनाओं से प्रारंभ होकर प्रयोगवादी अभिव्यक्ति तक अनेक पड़ावों से गुजरी है। उन्होंने सीधी वर्णनात्मक कविताओं के बाद रूमानी गीत तथा कविताएँ लिखीं। प्रगतिवाद से प्रभावित होकर उन्होंने सामाजिक-राजनैतिक यथार्थ को पूरी आत्मसजगता के साथ अभिव्यक्त किया है। वे नई संवेदनाओं और आधुनिक भाव-बोध के प्रयोगशील कवि हैं, अतः अज्ञेय ने उन्हें 'तारसप्तक' के कवियों में स्थान दिया। युग की वास्तविकता को उन्होंने अपने काव्य में बड़ी ईमानदारी और निर्भीकता से उतारा है। उन्होने हिंदी-कविता को न केवल नए कथ्य दिए हैं, बल्कि शिल्प के रूप में शब्दों को नए संस्कार भी। उन्होंने तुक्तक के रूप में हिंदी को नया छंद और कविता की एक नई शैली भी दी। उनकी परवर्ती रचनाओं में वर्ग-संघर्ष का अच्छा चित्रण है।

मुख्य रचनाएँ – ***छवि के बंधन, जागते रहो, तारसप्तक, मुक्तिमार्ग, ओ अप्रस्तुत मन, कागज़ के फूल, अनुपस्थित लोग, एक उठा हुआ हाथ, उतना वह सूरज है, बहुत बाकी है*** *– काव्य संग्रह हैं। भारतभूषण अग्रवाल बहुमुखी प्रतिभासंपन्न थे, अतः कविता के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, उपन्यास, निबंध, आलोचना, बाल-साहित्य आदि विधाओं मे भी रचना की।*

प्रस्तुत कविता मे कवि का व्यक्तित्व दो रूपों में विभक्त है। एक ओर वह क्लर्क बनकर आज के जीवन की जटिलताओं का सामना करने को विवश है और दूसरी ओर वह कलमकार और कलाकार बनकर सर्वत्र चर्चित और सम्मानित होना चाहता है। कवि जब अपने कलाकार रूप से मुक्ति पाकर मात्र क्लर्क बनकर जीना चाहता है तो उसका कलाकार रूप उसे गीता के संदेश की याद दिलाकर अपने व्यक्तित्व के एक पक्ष से उदासीन न रहकर कार्य करने की प्रेरणा देता है और जब वह मात्र कलमकार के रूप में जीना चाहता है तो उसके सामने आजीविका की विवशता आ खड़ी होती है।

मैं और मेरा पिट्ठू

देह से अकेला होकर भी
मैं दो हूँ
मेरे पेट में पिट्ठू है।

जब मैं दफ़्तर में
साहब की घंटी पर उठता-बैठता रहता हूँ,
मेरा पिट्ठू
नदी किनारे वंशी बजाता रहता है !
जब मेरी 'नोटिंग' कट-कुट कर 'टाइप' होती है
तब साप्ताहिक के मुख पृष्ठ पर
मेरे पिट्ठू की तस्वीर छपती है !
शाम को जब मैं
बस के फुटबोर्ड पर टँगा-टँगा घर आता हूँ
तब मेरा पिट्ठू
चाँदनी की बाँहों में बाँहें डाले
मुगल-गार्डेस में टहलता रहता है !

और जब मैं
बच्चे की दवा के लिए
'आउटडोर वार्ड' की क्यू में खड़ा रहता हूँ
तब मेरा पिट्ठू
कवि-सम्मेलन के मंच पर पुष्पमालाएँ पहनता है !

इन सरगर्मियों से तंग आकर
मैं अपने पिट्ठू से कहता हूँ :
भई ! यह ठीक नहीं
एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहतीं,
तो मेरा पिट्ठू हँसकर कहता है :
पर एक जेब में दो कलमें तो सभी रखते हैं !
तब मैं झल्लाकर, आस्तीनें चढ़ाकर
अपने पिट्ठू को ललकारता हूँ –
तो फिर जा, भाग जा, मेरा पिंड छोड़,
मात्र कलम बनकर रह !
और यह सुनकर वह चुपके से
मेरे सामने गीता की कॉपी रख देता है !
और जब मैं
हिम्मत बाँधकर
ऑखें मींचकर, मुट्ठियाँ भींचकर
तय करता हूँ कि अपनी देह उसी को दे दूँगा
तब मेरा पिट्ठू
मुझे झकझोरकर
'ऐफिशिएंसी बार' की याद दिला देता है !

एक दीखने वाली मेरी इस देह में
दो 'मैं' है।
एक मैं
और एक मेरा पिट्ठू।
मैं तो खैर, मामूली-सा क्लर्क हूँ
पर, मेरा पिट्ठू?
वह जीनियस है !

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

मौखिक

1. पेट में पिट्ठू होने से कवि का क्या आशय है?
2. जब कवि का क्लर्क रूप दफ़्तर मे साहब की आज्ञा के पालन में व्यस्त रहता है तो उसका कलाकार-मन किस गतिविधि में सक्रिय रहता है?
3. नदी किनारे वंशी बजाने वाले, मुगल गार्डेंस में टहलने वाले और कवि-सम्मेलन के मंच पर मालाएँ पहनने वाले व्यक्ति मे कवि के किस रूप की झलक मिलती है?
4. कवि अपने कलाकार रूप की गतिविधियों पर क्यों झल्लाता है?
5. मात्र कलमकार बनकर जीने में कवि के सामने क्या कठिनाई है?

लिखित

1. कवि क्लर्क जीवन की किन-किन जटिलताओं को जीने के लिए बाध्य है?
2. क्लर्क जीवन की जटिलताओं की उपेक्षा कर कवि का कलाकार मन किन सरगर्मियों में व्यस्त रहता है?
3. कलाकार रूप कवि के सामने गीता की कॉपी क्यों रख देता है?
4. इस कविता मे जीवन की जिस विडंबना का चित्रण हुआ है, उसे अपने शब्दों में लिखिए।

योग्यता-विस्तार

1. 'आज की भारतीय परिस्थितियों में मात्र कलमकार बनकर जीना संभव नहीं है।' विषय पर एक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

देह से अकेला होकर	–	एक शरीर धारण कर
मेरे पेट में पिट्ठू है	–	मेरे व्यक्तित्व के दो रूप हैं
नोटिंग	–	फ़ाइल पर लिखा जाने वाला टिप्पण
फुटबोर्ड	–	पायदान
आउट डोर वार्ड	–	अस्पताल का बहिरंग विभाग
सरगर्मी	–	गतिविधियाँ
गीता की कॉपी रख देता है	–	व्यक्तित्व के एक पक्ष से उदासीन न रहकर कार्य करने की प्रेरणा

आस्तीनें चढ़ाना	–	विरोधी से मुकाबले के लिए तैयार होना
एक म्यान में दो तलवारें रहना	–	एक देह में व्यक्तित्वो का निवास
एफिशिएंसी बार	–	एक देह में व्यक्तित्वों का निवास दक्षता-रोध, कर्मचारियों के वेतनमान मे वह चरण जहॉ उसे वार्षिक वेतन वृद्धि उसकी कार्य-कुशलता के आधार पर मिलती है।
जीनियस	–	प्रबुद्ध
नदी किनारे वंशी बजाना	–	स्वच्छंद भाव में विचरण करना
चॉदनी की बॉहों में बॉहें डाले	–	चॉदनी रात की शीतल छाया में
मुगल-गार्डेंस में टहलना	–	सुदर प्रकृति का आनंद लेना
कवि-सम्मेलन के मंच पर पुष्पमालाएँ पहनना	–	साहित्यिक सुख का उपभोग करना
मात्र कलम बन कर रहना	–	केवल कल्पना जगत में विचरण करते रहना
गीता की कॉपी रख देना	–	कर्मशीलता का संकेत देना
मामूली-सा क्लर्क होना	–	किसी प्रकार अपना गुज़ारा करने वाला।

गिरिजाकुमार माथुर



गिरिजाकुमार माथुर का जन्म सन 1919 में गुना (मध्य प्रदेश)में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उत्तर प्रदेश के झाँसी नगर में हुई। उन्होंने सन 1938 में विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर से बी.एससी. और लखनऊ विश्वविद्‌यालय से अंग्रेज़ी में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। शिक्षा समाप्त करके उन्होंने आकाशवाणी में कार्य प्रारंभ किया, बाद में दूरदर्शन से सेवा निवृत्त हुए।

गिरिजाकुमार माथुर का निधन सन 1994 में हुआ।

गिरिजाकुमार माथुर के गीत छायावादी प्रभाव लिए हुए हैं। इनमें आनंद, रोमांस और संताप की तरल अनुभूति के साथ-साथ लय भी मिलती है। उनके शब्द चयन में तुक-तान और अनुतान की काव्यात्मक झलक ध्वनित होती है। उनकी रचनाओं में मालवा की समृद्‌ध प्रकृति का विलक्षण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, जिसका अनुभव-आनंद उन्होंने बचपन से ही लिया है। वस्तुतः वे मांसल रोमांस के कवि हैं। वे वाचिक कविता-पाठ परंपरा के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। उनकी कविताओं में आंचलिक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

गिरिजाकुमार माथुर की प्रमुख रचनाएँ हैं : **नाश और निर्माण, धूप के धान, शिलापंख चमकीले, चीतरी नदी की यात्रा, जो बँध नहीं सका, जनम कैद** (नाटक), **नई कविता सीमा और संभावनाएँ** (आलोचना)।

प्रस्तुत कविता में बताया गया है कि इस विराट सृष्टि में आदमी का अस्तित्व अत्यंत लघु और क्षीण है किंतु आदमी अपने अहंकार, स्वार्थ और ईर्ष्या के वशीभूत होकर स्वयं को बहुत बड़ा मानने लगता है और जाति, धर्म, क्षेत्रीयता और भाषा की दृष्टि से आदमी-आदमी के बीच भेद-बुद्‌धि पैदा कर लेता है। इससे मानवी एकता को आघात पहुँचता है।

आदमी का अनुपात

दो व्यक्ति कमरे में
कमरे से छोटे–

कमरा है घर मे
घर है मुहल्ले में
मुहल्ला नगर में
नगर है प्रदेश में
प्रदेश कई देश में
देश कई पृथ्वी पर
अनगिन नक्षत्रों में
पृथ्वी एक छोटी
करोड़ों में एक ही
सबको समेटे है
परिधि नभ गंगा की
लाखों ब्रह्मांडों में
अपना एक ब्रह्मांड
हर ब्रह्मांड में
कितनी ही पृथ्वियाँ
कितनी ही भूमियाँ
कितनी ही सृष्टियाँ



यह है अनुपात
आदमी का विराट से
इस पर भी आदमी
ईर्ष्या, अहं, स्वार्थ, घृणा, अविश्वास लीन
संख्यातीत शंख सी दीवारें उठाता है
अपने को दूजे का स्वामी बताता है
देशों की कौन कहे
एक कमरे में
दो दुनिया रचाता है

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

मौखिक

1. कविता में सबसे छोटा और सबसे बड़ा किसे बताया गया है?
2. आकाश गंगा अपनी परिधि में किनको समेटे है?
3. संपूर्ण सृष्टि में हमारी पृथ्वी की क्या स्थिति है?
4. एक कमरे में दो दुनिया रचाने से कवि का संकेत मनुष्य की किस प्रवृत्ति की ओर है?

लिखित

1 कवि ने आदमी के बौनेपन को सिद्ध करने के लिए किस युक्ति का सहारा लिया है?
2. 'शंख सी दीवारें उठाता है' कहकर कवि मानवीय व्यवहार की किस स्थिति की ओर संकेत करता है?
3. कौन-से अवगुण आदमी-आदमी में भेदभाव पैदा करते हैं?
4. इस कविता के संदेश को अपने शब्दों मे लिखिए।

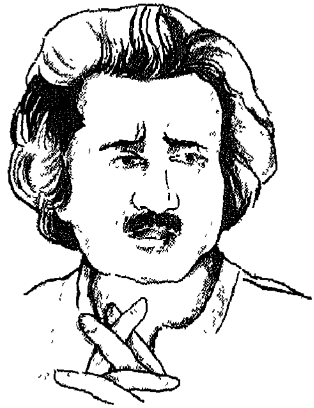
योग्यता-विस्तार

1. 'हम सब मानव एक हैं' विषय पर एक निबंध लिखिए।
2. 'हम सब पंछी एक डाल के' द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की इस कविता को खोजकर पढ़िए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

आदमी का अनुपात	–	संपूर्ण सृष्टि के बीच आदमी का अस्तित्व
नभ गंगा	–	आकाश गंगा
विराट	–	सर्वव्याप्त सर्वोच्च शक्ति, स्रष्टा
संख्यातीत	–	असंख्य
संख्यातीत शंख सी दीवारें उठाता है	–	मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव की असंख्य और अनावश्यक खाई पैदा कर लेता है।
एक कमरे में दो दुनिया रचाता है	–	एक ही कमरे में रहकर भी आदमी दूसरे आदमी के साथ दूरी बढा लेता है और आपसी सद्भाव और प्रेम खो बैठता है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना



सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जन्म सन 1927 में बस्ती (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उन्होंने एँग्लो संस्कृत उच्च विद्यालय, बस्ती से हाई स्कूल परीक्षा पास करके क्वीस कॉलेज, वाराणसी में प्रवेश लिया। एम.ए. की परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। अध्यापन करने और आकाशवाणी में सहायक प्रोड्यूसर रहने के बाद **दिनमान** के प्रमुख उप-संपादक के पद पर कार्य किया। अंत में बच्चों की मासिक पत्रिका **पराग** का संपादन-कार्य सँभाला।

सर्वेश्वरजी का निधन सन 1984 में हुआ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने समाज के हर वर्ग के लिए साहित्य रचना की।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना **तीसरा सप्तक** के कवि हैं। छायावाद के बाद **नई कविता** की पहचान कराने वाले कवियों में उनका विशेष योगदान है। यहीं से उनकी नए क्षितिजों के संधान की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। सुमित्रानंदन पंत ने उनकी कलादृष्टि की सराहना की है और उन्हें सहज-प्रयत्न कवि तथा नए कवियों में कलाबोध का पारखी कहा है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता में रोमानियत है और समसामयिकता भी। यदि वे समष्टि चेतना के प्रति अत्यधिक सजग हैं तो दूसरी ओर व्यष्टि चेतना के प्रति भी। उन्होंने समाज में फैली भुखमरी भी देखी है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं – **काठ की घंटियाँ, बाँस का पुल, एक सूनी नाव, गर्म हवाएँ, कुआनो नदी, जंगल का दर्द।** इनके अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास, नाटक और बाल साहित्य की भी रचना की है।

इस पाठ में दो छोटी कविताएँ ली गई हैं। पहली कविता **आज पहली बार** में बताया गया है कि मनुष्य के जीवन में आने वाली पराजय, दिशाहीनता, बाधाएँ और

बेगानापन जैसी प्रतिकूल शक्तियाँ भी मनुष्य को पराजित नही कर सकतीं, बशर्ते मनुष्य उनको अपने अनुकूल रूप मे बदलने के लिए दृढ़तापूर्वक उठ खडा हो और वह जीवन और समाज से कुछ लेने की इच्छा न रखकर देना सीख ले।

दूसरी कविता ***हँसा ज़ोर से*** *में कवि ने कहा है कि यह दुनिया बड़ी विचित्र है। इसे न किसी के ठहाके सुहाते हैं ओर न किसी का रूदन इसे विचलित कर पाता है। हँसी-रुदन को चुपचाप सहन करने वाले को यह घमंडी समझने लगती है। कवि का परामर्श है कि अपनी पीड़ा को किसी से बॉटने की कोशिश मत करो। उसका अकेले ही सामना करो और जीवन-पथ पर आगे बढ़ते जाओ।*

(क) आज पहली बार

आज पहली बार –
थकी शीतल हवा ने
शीश मेरा उठा कर,
चुपचाप अपनी गोद में रक्खा,
और जलते हुए मस्तक पर
काँपता-सा हाथ रख कर कहा :
'सुनो, मैं भी पराजित हूँ,
सुनो, मैं भी बहुत भटकी हूँ,
सुनो, मेरा भी नहीं कोई,
सुनो, मैं भी कहीं अटकी हूँ ;
पर न जाने क्यों–
पराजय ने मुझे शीतल किया,
और हर भटकाव ने गति दी,
नहीं कोई था
इसी से सब हो गए मेरे,
मैं स्वयं को बाँटती ही फिरी
किसी ने मुझको नहीं यति दी।'
लगा मुझको उठा कर कोई खड़ा कर गया।
और मेरे दर्द को मुझसे बड़ा कर गया।
आज पहली बार।

(ख) हँसा ज़ोर से

हँसा ज़ोर से जब, तब दुनिया
बोली – इसका पेट भरा है।
और फूट कर रोया जब,
तब बोली – नाटक है, नखरा है।
जब गुमसुम रह गया, लगाई
तब उसने तोहमत घमंड की।
कभी नहीं वह समझी इसके
भीतर कितना दर्द भरा है।
दोस्त कठिन है यहाँ किसी को भी
अपनी पीड़ा समझाना
दर्द उठे तो, सूने पथ पर
पॉव बढ़ाना, चलते जाना।

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) आज पहली बार

मौखिक

1. कवि के जलते हुए मस्तक से हवा को क्या एहसास हुआ होगा?
2. हवा ने कवि के सिर को अपनी गोद मे रखकर उसे कॉपते हुए हाथ से क्यों दुलराया?
   (क) वह कवि को अपना जैसा समझती थी।
   (ख) कवि की कविता की गूँज हवा मे विद्‌यमान थी।

(ग) वह पराजय और भटकाव के दर्द से उसे उबारना चाहती थी।

(घ) हवा किसी को अपना नही मानती थी।

3. हवा ने ऐसा क्या किया, जिससे सभी पराए उसके अपने हो गए?

लिखित

1. हवा और कवि में क्या समानताएँ और असमानताएँ थी?
2 कवि का दर्द क्या था? वह कवि से बड़ा कैसे हो गया?
3. हवा ने कवि को क्या सीख दी?

योग्यता-विस्तार

1. निम्नलिखित पंक्तियों को ध्यान से पढ़िए और प्रस्तुत कविता से इनकी तुलना कीजिए :

यदि पीना ही हो जहर
उसे दो तरह पिया जा सकता है
मरने से पहले ही मरकर
या उसी चरम भय से कोई अंधा बल पा
जीवन से भी ऊपर उठाकर।

–कुँवरनारायण

2. 'दर्द सबको माँजता है'– हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के उपन्यास 'शेखर एक जीवनी: भाग 1' से उक्त कविता को खोज़कर पढ़िए।

(ख) हँसा ज़ोर से

मौखिक

1. ज़ोर से हँसने पर दुनिया ने कवि पर क्या आरोप लगाया?
2. कवि की किस मनोदशा को लोगो ने नाटक-नखरा कहा?
3. अपनी पीड़ा दूसरों को समझा पाना कठिन क्यो है?

लिखित

1. कवि के हँसने की स्थिति, रोने की स्थिति और चुप रहने की स्थिति को दुनिया ने सही अर्थों मे ग्रहण क्यो नहीं किया?
2 पीड़ा के निवारण का कवि ने क्या उपाय सुझाया है?
3. सूने पथ पर पॉव बढ़ाने से कवि का क्या आशय है?

योग्यता-विस्तार

1. निम्नलिखित दोहे को पढ़िए और प्रस्तुत कविता के भाव की इससे तुलना कीजिए.

रहिमन निज मन की विथा, मन ही राखो गोय।
सुन इठिलैहैं लोग सब, बाँट न लैहैं कोय।।

शब्दार्थ और टिप्पणी

(क) आज पहली बार

जलता हुआ मस्तक	–	सांसारिकता मे भटका और उद्‌विग्न व्यक्ति
अटकी हूँ	–	बाधित हुई हूँ
यति	–	विश्राम, मुक्ति
बाँटती फिरना	–	स्वय को दूसरों के लिए करना
खड़ा कर जाना	–	आत्मविश्वास जगा जाना
मेरे दर्द को मुझसे बड़ा कर गया	–	दर्द ने पराजित कवि को दृढतापूर्वक खड़े होकर पुनः विजयी बनने की प्रेरणा दी।

(ख) हँसा ज़ोर से

पेट भरा है	–	सभी प्रकार से सुखी-समृद्‌ध, परिपूर्ण, संतुष्ट
फूटकर रोना	–	गहरे दर्द से रोना
नाटक	–	दिखावा करना, बनावटीपन
गुमसुम रह जाना	–	चुप रह जाना
तोहमत	–	आरोप, लांछन